वर्ष
२

परमानन्द संदेश

अंक
२, ३

जयन्ती अंक

परमानन्द संदेश

जयन्ती-अङ्क
वर्ष २ अङ्क २, ३
अग्रहायण-पौष | दिसम्बर-जनवरी
२०१८ | १९६१-६२

सचित्र आध्यात्मिक, धार्मिक मासिक

वार्षिक चन्दा—५)
एक प्रति का मूल्य—५० न० पै०

कार्यालय
शारदा प्रतिष्ठान
सी० के० १५।५१ सुड़िया,
बुलानाला वाराणसी-१
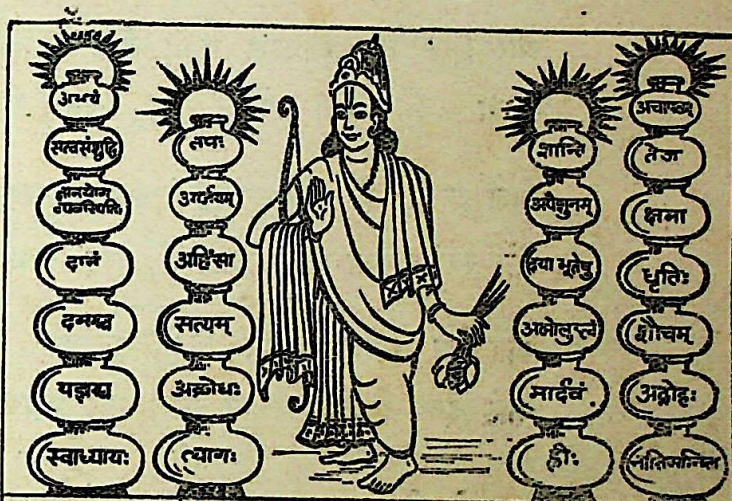
॥ सर्वं ब्रह्ममयं जगत् ॥

हरिरेव जगज्जगदेव हरिर्हरितो जगतो नहिं भिन्न तनुः।
इति यस्य मतिः परमार्थ गतिः स नरो भवसागर मुत्तरति ॥

सब जग प्रभु तेरा स्वरूपहि है, तेरे रूप अनेक तू एकहि है ॥
आत्मा से तूँ आकाश हुआ, फिर अनिल अनल जल बन करके।
पृथ्वी औषधियाँ अन्न रेत, रसमय फिर पुरुष बना तुहि है ॥

निज इच्छा से तूने अपनी, नाना रूपों को धार लिया।
फिर स्वांग रचा महिमण्डल में, तूहि एक भी और अनेकभि है ॥

कहिं शेष सुरेश नरेश कहीं, भुवनेश प्रजेश महेश बना।
कहिं दिव्य दिनेश गनेश बना, बहु स्वांग धरे तू अकेलहि है ॥

अणु से भी अणु परमाणु बना, कहिं विश्व विराट का रूप लिया।
कहिं पर्वत बृक्ष विशाल बना, पर भेद नहीं तू अभेदहि है ॥

निज देश में तू हदेश में तू, नर या नारी के वेष में तू।
हर देश में तू हर वेष में तू, फिर भी तू आप अरूपहि है ॥

गंगा की तरल तरंगों में, हर फूलों के हर रंगों में।
सबकी आनन्द उमंगों में, है समा रहा बस तुहि है ॥

गुरु कृपा भई जिनके ऊपर, वे 'हँस' कहें तेरे सिवाय।
दूजा कहुँ और दिखा न कोई, तु, मैं अरु ये सब आपहि है ॥

—योगिराज स्वामी हंसराज जी महारज
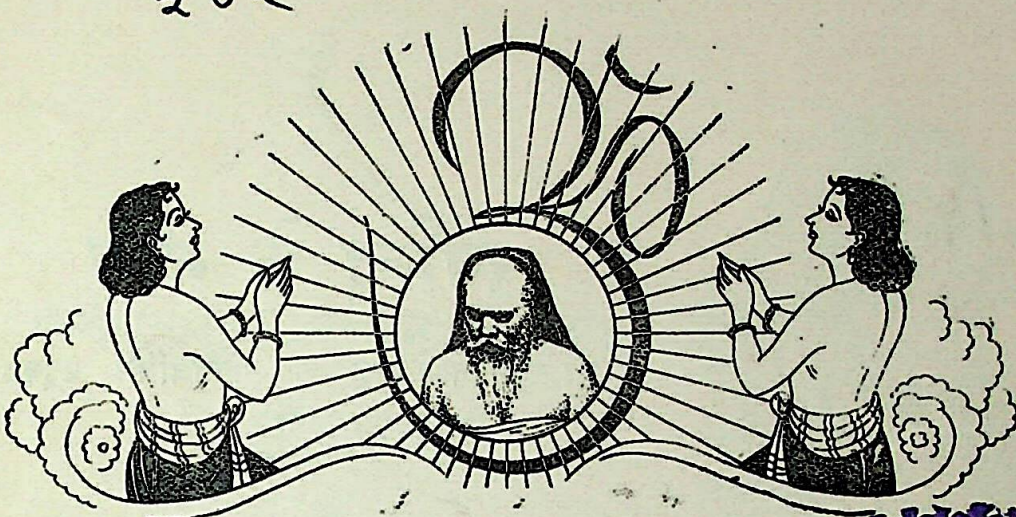
जयजय सद्गुरु शारदाराम

परमानन्द संदेश
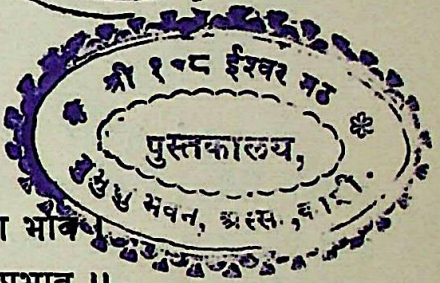
दुख खण्डन परमानन्द मण्डन, है इस पत्र का भाव।
पढ़ै सुनै अमलो बने, सो लख पावै प्रभाव ॥

वर्ष २ | वाराणसी दिसम्बर १९६१ जनवरी १९६२ | मूल्य–५० नये पैसे
अङ्क २,३ | अग्रहायण-पौष २०१८ जयन्ती अंक | वार्षिक–५) रुपये

बिनती

सद्गुरु जपो मन परमानन्द

जाहि सुमिरत काल डरपत कटत यम को फन्द।
श्वेत रूप अखण्ड अद्भुत नित्य सुख को कन्द ॥१॥

मोक्ष भाजन पद सरोरुह दास मन अलि-वृन्द।
चरित अलख अनूप अद्भुत देत परमानन्द ॥२॥

सर्व अवगुण भवन मैं जड़ भजत नहिं तजि द्वन्द।
शरण सेवक करत बिनती नाथ! काटो फन्द ॥३॥
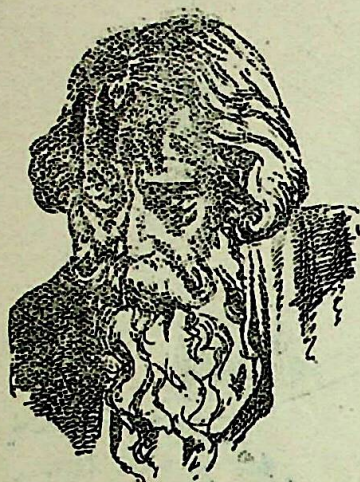
रवीन्द्र के गीत

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर कृत गीतांजलिसे उद्धृत

हे प्रभु ! तुम्हारे सम्मुख मेरा यही अन्तिम निवेदन है कि तुम अपनी दृढ़ शक्ति द्वारा मेरे हृदय-स्थलमें स्थित सम्पूर्ण दुर्बलताओं को नष्ट कर दो। तुम मुझे ऐसी शक्ति दो कि अपने शान्त, स्मित मुख द्वारा उपेक्षा का भाव दरशाते हुए दुःख को दुःख न समझूँ। तुम मुझे अपनी भक्ति की शक्ति दो जिससे मेरे कर्म सफल हों तथा प्रीति एवं स्नेह रूपी पुण्य प्रस्फुटित हो उठें। तुम मुझे ऐसी शक्ति दो कि मैं अज्ञानी बनकर किसी को क्षुद्र न समझूँ तथा किसी निष्ठुरके चरणोंमें अपना मस्तक नहीं झुकाऊँ। तुम मुझे ऐसी शक्ति दो कि मैं अपने चित्त को एकाग्र रक्खूँ तथा क्षुद्रता की भावना त्याग कर उसे ऊँचा उठाये रहूँ।

मुझे ऐसी शक्ति दो कि मैं तुम्हारे चरणों में अपना मस्तक रखकर, स्वयंको दिन-रात स्थिर रख सकूँ

\+ + +

मुझे बाधाओंने जकड़ रखा है। मैं इन्हें छुड़ाना चाहता हूँ, परन्तु छुटकारा पानेमें पीड़ा होती है। मैं मुक्ति पानेके लिये तुम्हारे पास जाता हूँ, परन्तु तुमसे माँगनेमें मुझे लज्जा आती है।

मैं यह जानता हूँ कि मेरे जीवन की श्रेष्ठतम निधि तुम्हीं हो। ऐसा और कोई धन नहीं है जो तुम्हारे समान हो। फिर भी मेरे घरमें जो टूटी-फूटी वस्तुएँ भरी हैं, उन्हें मैं फेंक नहीं पाता हूँ।

मेरे हृदय पर पड़े हुए धूल-मिट्टी के आवरणोंने तुम्हें ढँक रखा है। वह मृत्युसे परिपूर्ण है। यद्यपि मैं उन आवरणोंसे प्राण-पणसे घृणा करता हूँ, फिर भी उनमें लिप्त रहना मुझे अच्छा लगता है।

मैं अनेकों ऋणों, प्रवञ्चनाओं एवं विफलताओंमें पड़ा हुआ हूँ; परन्तु फिर भी जब तुम्हारे निकट कल्याण की प्रार्थना करने जाता हूँ, तब मेरे मनमें भय समा जाता है।

× × ×

मुझमें केवल इतना ही अहं शेष रहे कि मैं तुम्हें अपना स्वामी बनाए रहूँ।

[शेष पृष्ठ ८ पर देखिये]
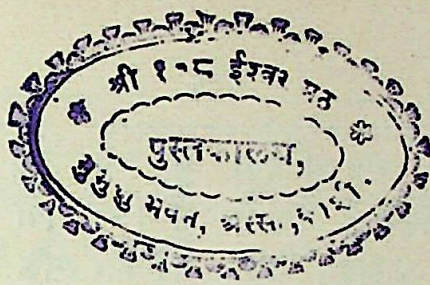
अवधूतमुनि भगवान दत्तात्रय के चौबीस गुरु

एक समय उस सत्-असत्का विवेक रखनेवाले निर्भय युवा अवधूत भगवान दत्तात्रयसे राजा यदुने पूछा—"आप इतने विद्वान होकर भी इस प्रकार एक अबोध बालक की भाँति कर्म आसक्तिसे शून्य रहकर विचरते हैं। सब लोग कामनारूपी दावानलमें जल रहे हैं पर आप गंगाजलमें अवस्थित गजके समान विषय-तापसे कोरे बचे हुए प्रतीत होते हैं। यह निर्मल बुद्धि आपको कहाँ से मिली है?"

उत्तरमें अवधूत महात्मा दत्तात्रय विनयपूर्वक बोले—"राजन! इस अवस्था तक पहुँचने के लिये मैंने २४ प्राणियोंको गुरु मानकर उनके व्यवहारसे शिक्षा ग्रहण की है।"

"पृथ्वीसे क्षमा और सहिष्णुताकी शिक्षा ली है। लोग पृथ्वी को खोदते हैं, उसपर मलमूत्र फेंकते है परन्तु पृथ्वी तनिक भी विचलित न होकर सबको अपनी गोदमें उठाये रहती है। विवेकी साधु पुरुषको भी पृथ्वीके समान सहनशील रहकर अपकार करनेवालोंके साथ भी क्षमाका बर्ताव करना चाहिए।"

"पर्वतोंसे यह सीखा है कि साधुको बिना किसी प्रत्युपकारकी भावनाके अपने जीवनकी सब चेष्टाओंको परोपकारमें ही लगा देना चाहिए। जैसे वृक्ष उनको काटने जलाने और उखाड़नेवालेको भी बिना संकोच पत्ते, छाल, जड़, गोंद, फूल, फल, लकड़ी, कोयला और राख आदिसे लाभ पहुँचाते हैं वैसे ही साधुको बुराई करनेवालोंके साथ भी भलाई ही करनी चाहिए।"

दो प्रकारकी वायुके समान, प्राणवायु केवल आहारमात्रकी अपेक्षा रखकर रूप-रस आदिसे कोई प्रयोजन नहीं रखता और वाह्य वायु गन्ध आदि गुणों तथा शीतोष्ण धर्मों से युक्त होता हुआ भी स्वयं निर्लिप्त रहता है, आत्मज्ञानीको भी शारीरिक धर्मोंसे मुक्त होते हुए भी अपने आपको शारीरिक गुण दोषोंसे अतीत समझना चाहिए। जैसे आकाश घटादि में रहता हुआ भी अखण्ड, निर्लिप्त और सम-

न्वयरूपसे व्यापक है और मेघ, वायु आदिका आधार होता हुआ भी उनसे अलग है, वैसे ही साधु पुरुष भी अपने आपको कालकृत तेज, जल, अन्नमय शरीरसे अलग समझे। जलके समान स्वाभाविक स्निग्ध, निर्मल, मधुर तथा तीर्थतुल्य रहकर दर्शन-स्पर्शन-कीर्तनद्वारा लोगोंको पवित्र करता रहे और सबका मल धोनेका प्रयत्न करे।"

"अग्निके समान तेजस्वी ज्ञानी, तपी, भजनानन्दी, दीप्तिशाली और दुर्धर्ष रहकर स्वतः ही जो कुछ प्राप्त हो उसे पेटके पात्र में रख ले, न अधिक की इच्छा करे और नहीं सञ्चय करे।"

"जैसे अव्यक्त गतिसे कालके द्वारा चन्द्रमाकी कलाएँ घटते-बढ़ते रहनेपर भी चन्द्रमण्डल कभी घटता-बढ़ता नहीं वैसे ही सब कालकृत अवस्थाएँ देहकी हैं आत्माकी नहीं और कालगतिसे शरीर ही उपजते तथा नष्ट होते हैं, आत्मा नहीं।"

"जिस प्रकार सूर्य पृथिवीका जल खींचकर समयानुसार वर्षा करता है वैसे ही साधु महात्माको भी विद्या और ज्ञानको सीखकर संसारमें फैलाना चाहिए।"

अवधूतजी राजा यदुसे कहते हैं—"कबूतर-कबूतरी पक्षियोंका एक जोड़ा बड़े स्नेह और सुखसे जंगलमें रहता था। उनके यहाँ बच्चे पैदा हो गए। एक दिन दोनों पक्षी चाग चुगने गये हुए थे। पीछे एक चीड़ीमारने आकर उनके बच्चोंको पकड़ लिया। चीड़ीमारके जालमें बच्चे फँसे ही थे कि दोनों पक्षी वापिस आ गये। बच्चोंको जालमें तड़पते देखकर कबूतरी से न रहा गया वह भी जालमें गिरकर फँस गई और इसके बाद कबूतर भी परिवारके बिना अपना जीवन व्यर्थ जानकर जालमें आ फँसा। कबूतरोंके उस जोड़ेसे यह शिक्षा ग्रहण की कि जो व्यक्ति गृहस्थके पालनमें आसक्त रहते हैं वे कबूतरके समान दुःखित होकर कष्टोंके शिकार होते हैं। यह मनुष्य-जन्म मुक्तिका खुला हुआ द्वार है। इसको पाकर भी जो लोग उस पक्षीकी भाँति विषयोंमें आसक्त होते हैं वे मूढ़ हैं।

अजगरसे यह शिक्षा ली है कि सुख दुःख स्वयमेव ही प्राप्त होते रहते हैं ज्ञानी पुरुषको इनकी इच्छा न करनी चाहिये। दैवाधीन जो थोड़ा बहुत, अच्छा-बुरा नीरस-सरस आपहीसे मिल जाये उसे उदासीन भावसे खा लेना चाहिये अन्यथा निराहार दशामें भी बहुत काल तक धैर्य धारणकर निरुद्यम पड़ा रहे। शरीरके भरण-पोषण करनेकी चिन्ता न करें।

मुनि महात्माको सागरकी भाँति प्रशान्त गम्भीर दुरवगाह्य अनातिक्रमणीय, अनन्तपार और अक्षोभ्य रहना चाहिये। सागर जिस प्रकार वर्षाऋतुकी भरी हुई नदियोंको पाकर फूलता नहीं और ग्रीष्मऋतुकी नदियोंको सूखी हुई देखकर कभी सूखता नहीं, वैसे ही आत्मज्ञानी साधुको भी समृद्धिकामनाओंको पाकर प्रसन्न और कामनाओंके पूरा न होनेपर क्षुभित न होना चाहिये।

पतङ्गसे यह सीखा है कि जो लोग इन्द्रियोंके वशमें होकर रूप आदिपर मोहित हो जाते हैं वे नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं।

भ्रमरसे यह सीखा है कि मुनि को उतना ही आहार करना चाहिये जिससे शरीर की शक्ति बनी रहे—शिथिल न हो। अनेक घरोंसे थोड़ा-थोड़ा अन्न लेकर खाना चाहिये। एक ही घरका आश्रय लेनेवाला उस भ्रमरके समान नष्ट होता है जो विशिष्ट गन्धके लोभसे एकही कमलमें रहकर सूर्यास्तके समय कमलके सम्पुटमें फँस जाता है। जिस प्रकार मधुकर सर्व प्रकारके फूलोंसे सारवस्तु ग्रहण करता है वैसे ही महात्माको सब शास्त्रोंसे सारांश ग्रहण करना चाहिए।

हाथ और पैरको ही पात्र बनाकर आहार मात्रसे प्रयोजन रक्खे, दूसरे समयके लिए संचित न करे। संचित करने वाला मधु-मक्षिकाके समान अपनी सम्पत्ति सहित नष्ट होता है।

चाहे लकड़ीको स्त्री क्यों न हो भिक्षुक उसे पैरसे भी स्पर्श न करे, अन्यथा हथनीके अङ्गसङ्गकी लालसा करने वाले हाथी के समान गढ़ेमें गिरकर पराधीनतामें जकड़ा जायगा। मधुहारीके मक्षिकाओंका मधु ले जानेसे यह सीखा है कि जो लोग धनको दान पुण्यमें नहीं लगाते उनका धन दूसरे ही खाते हैं।

व्याधके मधुर गीतोंको सुनकर हरिण उसके जालमें फँस जाता है। हरिणीपुत्र ऋष्यशृङ्ग स्त्रियोंके ग्राम्यगीत सुनकर उनके चंगुलमें फँस गये। इससे यही शिक्षा ली है कि बनवासी यति ग्राम्यगीतोंको सुननेकी आदत न डाले।

स्वादके बश मीन मांसके टुकड़ेमें छिपे हुए काँटेको नहीं देखता और फँस जाता है, इस लिए ज्ञानी पुरुष रसका स्वाद न ले। क्योंकि जब तक जिह्वा इन्द्रियको नहीं जीता तब तक अन्य इन्द्रियोंको जीत लेने पर भी कोई जितेन्द्रिय नहीं कहला सकता।

पिङ्गला वैश्या आधी रात्रि तक किसी धनपतिकी प्रतीक्षामें जागती रही। जब कोई न आया तो उसे वैराग्य हो गया और उसने अपने पिछले कुकर्मोंके लिए पश्चाताप करते हुए प्रतिज्ञा कर ली कि अब धनके बदले धर्म न बेचूंगी और रूखा सूखा खाकर अपने आत्मामें स्थित भगवानसे ही प्रेम करूँगी। उससे मैंने यह शिक्षा ली कि पुरुषके आशा रूप सब बन्धनोंको काटनेवाला वैराग्य ही है। बिना वैराग्यके देह बन्धनको काटनेका दूसरा कोई उपाय नहीं।

कुररी पक्षी बच्चोंके मोहमें कष्ट पाता है। उनसे अलग हो जाने पर उसे कोई कष्ट नहीं। बालकसे निश्चिन्तता और भोलापन सीखा है। भोलाभाला निरुद्यम बालक और मायासे अतीत ज्ञानी पुरुष ही निश्चिन्त और परमानन्दमें मग्न रहते हैं।

धान कूटते समय एक कुमारी कन्याके चूड़ियोंको तोड़कर दो दो रख लेने पर भी शोर बन्द न हुआ। अन्तमें उसने केवल एक-एक चूड़ी रहने दी फिर शोर नहीं हुआ। इससे मैंने यह शिक्षा पाई कि बहुत लोगोंका एकत्र रहना कलह और अनिष्टका कारण है। साधुके लिए एकांतवास ही लाभ-दायक हो सकता है।

बाण बनानेवाले से चित्तको एकाग्र करना, आसन लगाना, श्वासको वश करना, वैराग्यसे वशीभूत और अभ्याससे स्थिर करके मनको अपने लक्ष्य परमात्मामें लगाना सीखा है।

सर्पसे यह सीखा है कि मुनि अकेला ही विचरण करे, अपने रहनेका स्थान नियत न करे, गुहा आदिमें पड़ रहे, हर समय सावधान रहे और अल्प भाषी होकर इच्छानुसार घूमता रहे।

ऊर्णनाभिसे यह सीखा है कि एकमात्र नारायण देव कल्पके आदिमें अपनी मायासे इस विश्वको प्रकट करते हैं और फिर प्रलयकालमें अपनी कालशक्ति द्वारा सब शक्तियोंको अपनेमें लीनकर सर्वाधार रूपसे एक अद्वितीय शक्तिमें अवशिष्ट रहते हैं। सब शक्तियाँ क्रमशः अपने अपने कारणमें लीन होकर अन्तमें सब परम कारणमें समा जाती हैं। भगवानकी इसी विशुद्ध स्थितिको वेदोंमें कैवल्यमोक्ष कहा गया है। राजन्! वही परमानन्द मोक्षरूप परमेश्वर अखण्ड आत्मा नुभवरूप कालके द्वारा अपनी त्रिगुणमयी माया को सचेष्ट करके सृष्टिके सूत्रस्वरूप महत्तत्त्वको प्रकट करते हैं। महत्तत्त्वसे तीनों गुणों अर्थात् विविध विश्वकी सृष्टि करनेवाला त्रिविध अहंकार प्रकट होता है। सूत्र स्वरूप महत्तत्त्वमें ही यह विश्व ओत प्रोत है और अध्यात्म प्राणवायु महत्तत्व हीसे जीवात्मा संसारमें प्रवृत्त है। जैसे ऊर्णनाभि अपने मुखसे जाला फैलाकर सृष्टि रचता और समेट लेता है वैसे ही भगवान इस विश्वकी सृष्टि, स्थिति और लय करते हैं। पेशस्कृतसे यह सीखा है कि मनुष्य एकाग्र मनसे जिस ओर ध्यान लगाता है उसी रूप बन जाता है। हे राजन्! मैंने अपने शरीरसे भी बहुत कुछ शिक्षा ग्रहणकी है इसलिए इसे भी शिक्षा दाता गुरु मानता हूँ। क्योंकि यद्यपि यह शरीर अनित्य है पर मोक्षका द्वार भी यह मनुष्य शरीर ही है।

रवीन्द्र के गीत [पृष्ठ ४ कालम २ से आगे]

मैं सब दिशाओं में तुम्हीं को देखूँ, सब प्रकारसे तुम्हारा ही सामीप्य प्राप्त करूँ तथा दिन-रात तुम्हीं को अपना प्रेम समर्पित करता रहूँ। मुझमें केवल इतनी ही इच्छा शेष रह जाए कि मैं तुम्हें अपना स्वामी बनाये रहूँ।

मुझमें केवल इतना ही अपनत्व शेष रहे कि मैं तुम्हें कहीं भी ढक (छिपा) न सकूँ।

मेरे प्राणों में तुम अपनी लीला रचाओगे यही सोच कर इस संसारमें मैंने उन्हें (प्राणों को) धारण किया है। मैं तुम्हारे ही बाहु-बन्धनोंमें बँधा रहूँगा।

मुझमें केवल इतना ही बन्धन शेष रहे कि मैं तुम्हें अपना स्वामी बनाये रहूँ।

—:०:—

सन्त वाणी

सद्गुरु बाबा शारदाराम मुनिजी महाराजका

प्रवचन
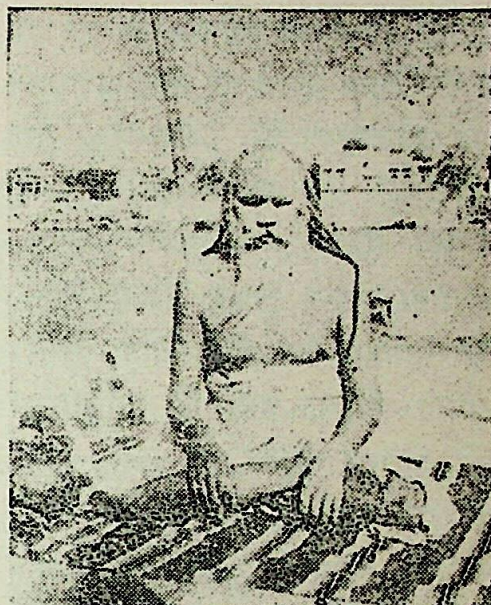
ॐ ब्रह्म को सिर नाय के, आत्म करो विचार।
सदा सब्रहि ॐ स्तुति, कर रहे वेद पुकार॥

भाइयो! बहनों! आज गीता जयन्ती है। इसलिए गीता की कुछ वाणी सुनाते हैं।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥
न मां दुष्कृतिनो मूढ़ाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥
चतुर्विधा भजन्ते मां जना सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥
तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः॥
उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्॥
बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

॥ गीता अध्याय–७ श्लोक १४–१९ ॥

श्रीकृष्ण भगवान गीताके सातवें अध्याय में मायाकी शक्तिका वर्णन करते हुए बताते हैं कि मेरी माया जो है वह तीन गुणवाली है, सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी। ऐसी यह दैवी माया है। दैवी कहनेसे अकथनीय अर्थात् इस मायाने देवता, मानव और दानव इन सबको तीनों गुणोंसे वशमें किया हुआ है। ऐसी मेरी मायासे पार होना अति दुस्तर है। यह असीम महिमा वाली है। जिस प्रकार समुद्रको शरीरसे तैरकर पार नहीं हुआ जा सकता उसी प्रकार मायासे भी पार नहीं हो सकते, अगर तरना चाहे, पार होना चाहे तो प्रभुकी शरणसे तरेगा।

मायाकी शक्ति बताकर अब भगवान अपनी शक्तिका वर्णन करते हुए बताते हैं कि देवता सतोगुणी हैं, मनुष्य रजोगुणी तथा भूत-प्रेत तमोगुणी हैं। भगवान कहते हैं जो भी मेरी शरण लेता है, ध्यान करता है, योग करता है वह मेरी मायासे पार हो जाता है। मतलब यह कि जीव संकटमें पड़ा है। यदि एक फुन्सी हो तो मनुष्य हमेशा खुजलाता रहता है। परन्तु जब उसको नींद आ जाती है तब उसकी खुजलीका कष्ट जाता रहता है। उसी प्रकार जीवपर त्रिगुणी मायाका संकट है। कब तक ? जब तक परमात्माका शरण नहीं लिया, जब परमात्माकी शरण ले लेता है तब मुक्त हो जाता है। अब भगवान जीव का वर्णन करते हैं कि जो अभिमानी हैं ममता बस होकर मनमाना कर्म करते हैं वे पापाचारी हैं। जो भक्तिहीन, नाम, ध्यानसे रहित हैं वे नीच हैं, जो अधर्मी हैं, सत्यहीन हैं वे राक्षस हैं। ऐसोंकी निन्दा करते हुए कहते हैं कि ये जीव मेरा भजन नहीं करते। इनके आगे भगवान वर्णन करते हैं कि जो मेरा भजन करते हैं, जो मेरा नाम जपते हैं वे चार प्रकारके लोग हैं—एक 'आर्त' अर्थात् जो दुखमें प्रभुको याद करते हैं। ऐसे भक्त बहुत हैं—ब्रजवासियों पर जब इन्द्रने वर्षा किया तब सब मिलकर भगवानकी शरण गए, भगवानसे प्रार्थना किए कि हे प्रभु इस दुखसे हमें बचाइये। तब भगवानने उनकी रक्षा की। २०८०० राजा जरासन्धकी कैदमें बन्द थे उन्होंने भगवानकी शरण ली, भगवानकी याद किए, तब भगवानने भीमके द्वारा जरासन्धको युद्धमें मरवा कर सब राजाओं को मुक्त किया। द्रौपदी पर जब संकट पड़ा तब उसने पहले दरबारमें बैठे हुए भीष्म पितामह, कर्ण आदि बुजुर्गोंसे रक्षाके लिये प्रार्थना की, परन्तु उनसे निराश होकर फिर अपने पतियोंसे प्रार्थना की, क्योंकि उसने समझा हमारे पति विश्व विख्यात हैं हमारी रक्षा करेंगे, परन्तु उन्होंने भी रक्षा नहीं की तब द्रौपदीने भगवानको पुकारा, उनसे प्रार्थना की तब भगवानने द्रौपदीके लाजकी रक्षा की। इस प्रकारके आर्त भक्तोंका अनेक उदाहरण मिलता है।

दूसरे प्रकारके भक्त हैं 'जिज्ञासु' अर्थात् ईश्वरको जाननेके वास्ते, ईश्वरका अस्तित्व देखनेके वास्ते, ईश्वरको जाननेकी इच्छासे जो भक्ति करते हैं वे भक्त जिज्ञासु हैं। जनकजी, उद्धवजी ऐसे ही भक्त हुए हैं। ये

प्रथम श्रेणीके जिज्ञासु होकर फिर ब्रह्मज्ञानी हुए हैं। जिज्ञासुकी भक्ति ईश्वरको जान लेनेके बाद खतम हो जाती है।

तीसरे प्रकारके भक्त 'अर्थार्थी' हैं—ये भक्त ऐसे हैं जो संसारके ऐश्वर्यकी प्राप्ति और परमगति के लिये भक्ति करते हैं। माताके गर्भमें जो कौल किया जाता है अपने उस कौलको पूरा करनेके लिए जो भक्ति करते हैं, नाम जपते हैं वे भी 'अर्थार्थी' हैं, क्योंकि वे भी अपने अर्थको पूरा करनेके लिये ही भक्ति करते हैं।

चौथे प्रकारके जो भक्त हैं वे हैं "ज्ञानी"। सनक, सनन्दन सनातन, सनत् कुमार ये ज्ञानी हुए हैं। ये चारो ब्रह्माके संकल्पसे उत्पन्न हुए हैं। ब्रह्माजीने इनसे कहा कि तुम तप करो, तप करके विवाह-शादी करो तथा सन्तान उत्पन्न करके सृष्टिकी रचना करो। इन्होंने कहा—"यह हमसे नहीं होगा, हम 'परमानन्द' को छोड़कर, आत्म सुखको छोड़कर 'विषयानन्द'में नहीं रमेंगे।" फिर ब्रह्माने संकल्पसे दस पुत्रोंको उत्पन्न कर उनसे सृष्टि की रचना करनेको कहा। ये दस पुत्र मरीचि इत्यादिके नामसे जाने जाते हैं। इन्होंने विवाह करके सन्तानकी उत्पत्तिसे विश्वकी रचना की। यह सारा विश्व इन्हीं दस ऋषियोंकी सन्तान माना जाता है।

जो ज्ञानी होते है वे मायाके झंझटमें नहीं फँसते, इनका कोई स्वार्थ नहीं होता। सनक, सनन्दन, सनातन, सनतकुमार इनका सदा बाल अवस्था रहती थी। ऐसे चार प्रकार के भक्तोंका वर्णन भगवानने किया है। आगे भगवान वर्णन करते हैं कि इन चारोंमेंसे जो 'ज्ञानी' है वह मुझे अधिक प्रिय है। क्योंकि पहले तीन प्रकारके भक्त जो हैं वे स्वार्थी हैं, स्वार्थके लिए ही वे भक्ति करते हैं। परन्तु ज्ञानी सतत् भगवद्में लीन रहता है। वह अपने आपको भिन्न नहीं मानता, जो नर है वही नारायण है, जो जीव है वही शिव है, जो आत्मा है वही परमात्मा है, इस प्रकार ज्ञानी की दृष्टि होती है। भगवान आगे बताते हैं कि जैसे आकाश सारे विश्वमें भरा है। करोड़ों मकानोंमें एक ही आकाश भरा हुआ है। जो जलके अन्दर आकाश है उसे जलाकाश कहा जाता है, जो घटके अन्दर भरा है वह घटाकाश है, जो मेघमें भरा है वह मेघाकाश है, जो भवन में है वह मठाकाश है। उपाधिमें सबके भिन्न-भिन्न नाम हैं। परन्तु उन सबमें एक महाकाश ही भरा है। उसी प्रकार शरीरमें भी उपाधिका फरक है। एक लड़का है, वह किसीका लड़का है और किसीका पिता भी है, किसीका पोता है तो किसी का पितामह भी है। शरीरकी दृष्टिसे पिता पुत्रमें कोई भेद नहीं, क्योंकि सबका शरीर पाँच तत्वोंसे मिलकर बना है। सबके शरीरकी रचना एक जैसी ही है सिर्फ उपाधिमें भेद है। छोटा-बड़ा ऊँच-नीच आदि भी उपाधि है ज्ञानी की दृष्टिमें उपाधि नहीं होती, वे सदा आत्मामें परमात्मा को और परमात्मामें आत्माको देखते हैं। आगेके श्लोकमें भगवान वर्णन करते हैं—चारो भक्त उदार हैं सुकृति हैं। सुकृति पुण्य-आत्माको बोला जाता है, चारो भक्तोंके हृदयमें उदारता है। परन्तु ज्ञानीके हृदयमें अधिक

उदारता है क्योंकि उसमें भेदभाव नहीं है। भक्तके अन्दर गुण चाहिये। चिन्ह नहीं चाहिये। सरकारी आदमीको या सरकारी ड्राइवरको उनका एक चिन्ह होता है परन्तु उनमें मोटर चलाने का गुण भी होता है, इसलिये उसे चिन्ह मिलता है। भक्तोंमें गुणकी आवश्यकता है। यद्यपि चारो भक्त पुण्यात्मा हैं उनमें शील, शौच, उदारता, संयम है तो भी ज्ञानी मेरी आत्मा है, मुझसे भिन्न नहीं है, जो पूर्णयोगी है वह मुझे सर्वत्र देखता है।

चींटी ते कुञ्जर स्थूला,
सब पर कृपा दृष्टि कर फूला,

ऐसे ज्ञानी मुझसे भिन्न नहीं। ज्ञानी मनुष्य भगवानको ही सबमें देखते हैं, सबको भगवानका ही स्वरूप जानते हैं। सूतसे वस्त्र बनता है, इसका मतलब है कि सूत वस्त्रके अन्दर है, परन्तु विचार करके देखा जाए तो सूत ही वस्त्र है और वस्त्र ही सूत है। पानीसे बर्फ बनता है परन्तु पानी ही बर्फ है तथा बर्फ ही पानी है। जब भगवानने सृष्टिके रचनाकी इच्छा की तब उन्होंने कहा—मैं एक हूँ, अनेक रूप धारण करूँ। फिर नर और नारीका रूप धारणकर सृष्टि-रचना किया, ऐसा उपनिषद् का सिद्धान्त है। ब्रह्मज्ञानीकी दृष्टि बन जानेसे वे एक क्षण भी प्रभु परमात्मा से दूर नहीं होते। सदा वे प्रभुमें ही लीन रहते हैं। अज्ञानी मनुष्य प्रभु परमात्माको अपने आपसे दूर समझते हैं, अपने आपको प्रभुसे भिन्न समझते हैं। ब्रह्मज्ञानी के लिए प्रभु दूर भी नहीं, पास भी नहीं क्योंकि वह स्वयं ही प्रभु का स्वरूप है और प्रभु हर स्थान पर परिपूर्ण है। शरीर अपनेसे दूर नहीं शरीर सम्बन्धियोंसे दूर या नजदीक है। शरीर आत्मासे दूर नहीं क्योंकि आत्मा अपने आपमें परिपूर्ण है, ज्ञानी अपनी आत्मामें लीन हो जाते हैं। वे आत्माके सिवाय और किसीको नहीं देखते, आत्मा परमात्माका स्वरूप है, वे हर स्थान पर परमात्माको ही देखते हैं।

बाकी तीन प्रकारके भक्त अपने-अपने मार्गमें चलते रहते हैं, तथा ब्रह्मज्ञानी मुक्त हो जाते हैं। पहले तीन प्रकारके भक्त स्वार्थ पूरा हो जानेसे प्रभुको भूल जाते हैं। 'आर्त' दुःख खतम हो जानेसे भूल जाते हैं। परन्तु ज्ञानी कभी नहीं भूलते। उत्तम गतिका भागी ज्ञानी ही है। आगे भगवान श्रीकृष्ण वर्णन करते हैं मनुष्य अनेक जन्मोंमें जिज्ञासु बन करके प्रभुका ध्यान करता है, प्रभुका जप करता है, अभ्यास करता है, योग करता है। फिर पुण्यके प्रताप से उसका अज्ञान नष्ट हो जाता है और ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है और मुक्त हो जाता है। बुद्धि मलीन होगी तो ज्ञान नहीं मिलेगा, ब्रह्म नहीं दिखेगा। सूर्यका प्रतिबिम्ब जैसे शुद्ध पानीमें दिखता है उसी प्रकार बुद्धि शुद्ध होनेसे ही ब्रह्म दिखेगा और ज्ञानकी प्राप्ति होगी।

दो आदमी बंगला बनवा रहे हैं। एक आदमीने एक ही कारीगर रखा है तथा दूसरेने बहुतसे कारीगर रखे हैं। जिसने एक कारीगर रखा है उसका बंगला बड़ी देरसे तैयार होता है और जिसने बहुतसे कारीगर रखे हैं उसका बंगला

[शेष पृष्ठ १६ पर देखिये]

क
३४५

सन्त और विश्व-कल्याण

श्री वृहस्पति

सन्त शब्दका प्रयोग बहुधा ब्रह्मानन्द सम्पन्न व्यक्तिके लिए होता है। कुछ विद्वान 'सन्त' शब्दको "सनोति प्रार्थितं फलं प्रयच्छति" के आधार पर बने हुए 'सन्ति' वा "संत्य" शब्दका विकृत रूप समझते हैं और उसका अर्थ फलदाताओं में श्रेष्ठ बतलाते हैं।

भागवतमें सन्त पवित्रात्माके अर्थमें प्रत्युक्त हुआ है यथा–प्रायेण तीर्थाभिगमापदेशैः स्वयंहि तीर्थानि पुनन्ति सन्तः ॥ भा० १–१९–८॥

गोस्वामी तुलसीदासजीके निम्नपदके अनुसार संत सज्जन मनुष्यको कहते हैं–

बन्दौ सन्त असज्जन चरणा।
दुःखप्रद उभय बीच कछु वरणा।

भर्तृहरि कहते हैं–"सन्तः स्वयं परिहिते विहिताभियोगाः" इनके अनुसार सन्तको परोपकारी होना चाहिए। महाभारत सन्तका लक्षण कहते हुए उन्हें सदाचारी होना बतलाता है। यथा—"आचार लक्षणां धर्मः, सन्तश्चाचार लक्षणाः।" बौद्ध ग्रन्थोंमें सन्त शब्द शान्त अर्थ में प्रत्युक्त हुआ दृष्टिगोचर होता है। यथा—"सन्त अस्य मनं होति॥" अर्हन्तवग्ग, गाथा ७

जो कुछ भी हो यह स्पष्ट है कि सन्त शब्दका अर्थ और प्रयोग बहु व्यापक है। मूलतः यह संस्कृत शब्द 'सन्' का बहुवचन है। सन् शब्द भी 'अस्' धातु से शतृप्रत्यय लगाकर सदा रहने वाले शुद्ध अस्तित्व युक्त परमतत्त्वके लिए प्रत्युक्त होता है। संतको सत् (सत्य) का ही समानार्थक मानते हैं। इस भावमें संत शब्दका प्रयोग वैदिक साहित्यमें भी दृष्टिगोचर होता है।

सुपर्णं विप्रा कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति ॥ ऋग्वेद १०–११४–५ ॥

कतिपय प्रसिद्ध महात्माओंने भी संत एवं परमात्मामें कोई मौलिक भेद नहीं माना है। देखिए तुलसीदास कहते हैं—

"जानेसु संत अनंत समाना—"

गरीबदासजी साईं औ सन्तको एक सरीखा जानकर किसी प्रकारकी भी मीनमेख करनेकी आवश्यकता नहीं समझते हैं—

"साईं सरीके सन्त हैं यामे मीन न मेख–"

पलटू साहब भी कहते हैं—

"सन्त औ रामकौ एक कै जानै,
दूसरा भेद ना तनिक आनै—"

अतः सन्त शब्द उस व्यक्तिकी ओर संकेत करता है जिसने सत् रूपी परमतत्वका अनुभव कर लिया हो और जो इस प्रकार अपने

व्यक्तित्वसे ऊपर उठकर उसके साथ तद्रूप हो गया हो। जो सत्य स्वरूप नित्य सिद्ध वस्तुका साक्षात्कार कर चुका है अथवा अपरोक्षकी उपलब्धिके फलस्वरूप अखण्ड सत्यमें प्रतिष्ठित हो गया है, वही संत है।

भगवद्गीता संत शब्दमें सन्निहित कुछ अन्य भावोंकी ओर भी इंगित करती है। यह यज्ञ, तप व दानमें स्थिर भावना सहित निष्काम कर्मको भी सत्की संज्ञा देती है।

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्म्मणि तथा सच्छब्दः पार्थयुज्यते॥
यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते॥

स्पष्ट है कि गीता सत्पदवाची संत होनेके लिए केवल ब्रह्मनिष्ठ हो जाना ही प्रर्याप्त नहीं मानती। इसके लिए १—साधु भाव अर्थात् सभी प्राणियोंका हित एवं सुहृदभाव। २—प्रशस्तकर्म—सत्कार्य करनेकी क्षमता। ३—यज्ञ ४—तप ५—दान ६—कर्म, अर्थात् परमेश्वरके लिये निष्काम भावसे अनवरत कर्म आवश्यक हैं।

कबीर साहबने भी संतोंका लक्षण निर्वैरी, निष्काम, प्रभुप्रेमी, और विषयोंसे विरक्त होना बतलाया है। यथा—

निरवैरी निहकामता, साईं सेती नेह।
विषया सूँ न्यारा रहै संतनिको अँग एह॥

गोस्वामी तुलसीदास जीने भी श्री रामचंद्र द्वारा संतोंकी महिमा कहलाते हुए सभी सांसारिक सम्बंधोंके प्रति प्रदर्शित ममताके धागोंको बटोर लेने और उन्हें सुदृढ़ रस्सीमें बँटकर उसे प्रभु चरणोंमें बाँध देने, समदर्शी बने रहने तथा किसी प्रकारकी कामना न रखनेको ही उनके प्रधान लक्षण बतलाया है।

सबकै ममता ताग बटोरी।
मम पद मनहिं बाँध बरि डोरी॥
समदर्शी इच्छा कछु नाहीं।
हर्षशोक भय नहिं मन माहीं॥
अस सज्जन मम उर बस कैसे।
लोभी हृदय बसइ धन जैसे॥
तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरे।
धरउँ देह नहिं आन निहोरे॥

॥ सुन्दर काण्ड ॥

सन्तकी परिभाषाके अन्तर्गत, इस प्रकार, विषयोंके प्रति निरपेक्ष रहते हुए केवल सत्कर्म करना, सद्रूप परमतत्वमें एकान्तनिष्ठ रहा करना, सभी प्राणियोंके प्रति सुहृदभाव रखते हुए किसीके प्रति वैर भाव न प्रदर्शित करना तथा जो कुछ करना उसे निःसंग होकर, निष्काम भावके साथ करना समझे जा सकते हैं।

लेखका सारांश यह है कि सन्त लोग आदर्श महापुरुष हुआ करते हैं और इसके लिए उनका, पूर्णतः आत्मनिष्ठ होने के अतिरिक्त समाजमें रहते हुए निस्वार्थभावसे विश्व कल्याणमें प्रवृत्त रहा करना भी आवश्यक है। सन्त लोग कुछ न करते हुए भी विश्वका कल्याण करते हैं। ऐसे कर्मको वे लोकसंग्रह मात्रके लिए ही सम्पन्न करते हैं।

५ दिसम्बर जिनकी पुण्य-तिथि है

संत ज्ञानदेवजी महाराज

श्री सतीश कुमार

श्री ज्ञानदेवका दूसरा नाम ज्ञानेश्वर भी था, इनके पिताका विट्ठलपन्त और माताका नाम रुक्माबाई था। संवत् १३८५ में दक्षिणके शालन्दी नामक गाँवमें इनका जन्म हुआ था। विट्ठलपन्त परमात्माके भक्त और वैराग्यवान पुरुष थे। उनके मनमें संन्यास ग्रहण करनेका विचार था। उन्होंने कई बार इसके लिए अपनी पत्नीसे अनुमति माँगी परन्तु कोई सन्तान न होनेके कारण बुद्धिमती स्त्रीने शास्त्रानुकूल उन्हें सम्मति नहीं दी। विट्ठलजीको इससे खेद हुआ और वे किसी न किसी बहाने स्त्रीकी सम्मति प्राप्त करने की ताकमें लगे रहे। दैवयोगसे एक दिन उनकी साध्वी स्त्री किसी दूसरे विचारमें निमग्न थी इसी अवसर पर पन्तजीने उससे गंगास्नान करनेकी अनुमति माँगी, स्त्रीने बिना विचारे, "जहाँ आपकी इच्छा हो वहीं जाइये" कह दिया। पन्तजीने इसीको पत्नीकी अनुमति समझा और वे तुरन्त काशी चले गये और वहाँ स्वामी पाद्यतेश्वरजीसे दीक्षा लेकर संन्यास ग्रहण किया, स्वामीके पूछनेपर पन्तजीने कह दिया कि वह स्त्रीकी अनुमति लेकर घरसे निकले हैं।

कुछ दिनोंके बाद स्वामीजी तीर्थयात्रा करते हुए आलन्दी ग्राममें आ निकले और एक पीपलके वृक्षके नीचे ठहरे, संयोगवश रुक्माबाई भी वहीं पीपल पूजने आयी थीं उसने साधुको देखकर प्रणाम किया तब स्वामीजीने उसे "पुत्रवती भव" कहकर आशीर्वाद दिया। इस आशीर्वादको सुनकर वह हँस पड़ी। स्वामी जीने जब हँसनेका कारण पूछा तब उसने अपने पतिके घरसे चले जानेकी बात कहकर उसकी बिना अनुमति संन्यासी हो जानेकी शंका प्रकट की। सारा वृत्तान्त सुननेपर स्वामीजीको यह निश्चय हो गया कि उनका नवीन शिष्य विट्ठलपन्त ही इस स्त्रीका स्वामी है। स्वामीजीने रुक्माबाईको सान्त्वना देकर बिदा किया और पन्त पर किंञ्चित नाराज होकर उसे पुनः गृहस्थाश्रममें जानेकी आज्ञा दी, यह आज्ञा पन्तजीके लिए बड़ी कठोर और असह्य थी परन्तु गुरुकी आज्ञाको गरीयसी मानकर पन्तजी उसे स्वीकार कर घर लौट आये।

विट्ठलपन्तके तीन पुत्र और एक कन्या हुई, जिसका नाम क्रमशः निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव, सोपानदेव और मुक्ताबाई था। महाराष्ट्रमें ये चारों ही सन्तोंकी प्रधान श्रेणीमें गिने जाते हैं।

एक दिन निवृत्तिनाथ रास्ता भूल गये, भटकते-भटकते वे अंजनी नामक पहाड़की एक गुफामें पहुँचे। शौभाग्यवश मुनि श्री गैनीनाथ जीके उन्हें दर्शन हुए। निवृत्तिनाथ उनके चरणोंपर गिर पड़े। मुनिने उनको परम अधिकारी जानकर ब्रह्मोपदेश देकर बिदा किया। निवृत्तिनाथने घर आकर वही उपदेश अपने दोनों भाई और बहनको देकर उन्हें कृतार्थ किया। ज्ञानेश्वरजीने जो उपदेश दिया था उसका सार यह है—

"अनन्त जन्मोंके पुण्यबलसे जीभपर रामनाम आता है, जिस कुलमें रामनामका उच्चारण होता है वह कुल धन्य है। रामनाम कहते ही अनेक जन्मोंके दोष नष्ट हो जाते हैं। रामनामसे कोटि कुलोंका उद्धार हुआ है। रामकृष्णका स्मरण करनेवाले धन्य हैं। आधी घड़ीके लिए भी रामनामको नहीं बिसारना चाहिए। पहले कुछ तप किया होगा तभी राम नाम मुखमें आवेगा। यह नाम अमृतसे भी मधुर है, कल्पतरुसे भी उदार है। नामके प्रताप से ही प्रहलादको भगवानने अपनी गोदमें बैठाया, ध्रुव और उपमन्युने भी वही नाम गाया, अजामिल पवित्र हो गया, लुटेरा व्याध बाल्मीक मुनि बन गया। अतएव कहना यही है कि भगवन्नाम रूप अश्वारोहण करो, भजन रूपी तलवार पकड़ो, उससे काम क्रोधादिके मस्तक छेदनकर सब प्राणियोंमें समानता रक्खो और अविवेकरूपी दुष्ट राजाको मारकर क्षमा दयारूप नगरीका उद्धार करो।" आपकी ज्ञानेश्वरी गीता विख्यात है। इसके सिवाय 'अमृतानुभव' नामक एक वेदान्तका और ग्रन्थ लिखा है।

ज्ञानदेवने और भी कई अलौकिक चमत्कार दिखाए। एक बार एक योगी जिनका नाम चांगदेव था ज्ञानेश्वरसे मिलनेके लिए बाघपर सवार होकर चले। ज्ञानदेवको भी इस बातका पता लग गया। उन्होंने चांगदेवके अहंकारको तोड़ देना ही उचित समझा। इस लिये भाई बहन एक दीवार पर जा बैठे और उसे चलनेकी आज्ञा दी। दीवार चलने लगी। यह चमत्कार देख चांगदेवके आश्चर्यका ठिकाना न रहा और उनका सब अहंकार जाता रहा। श्री ज्ञानदेवजी संवत् १४०७ में २२ वर्षकी आयुमें जीवित समाधिस्थ हुए।

—०—

प्रवचन (पृष्ठ १२ कालम २ से आगे)

जल्दी तैयार होता है। मुमुक्षु रूपी सेठ है, बंगला रूपी बुद्धि है। केवल योग द्वारा बुद्धिका विकास बड़ी देरसे होगा। सत्संग, भगवद्-भक्ति, योगाभ्याससे बुद्धिका विकास जल्दी होता है और ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है, फिर ब्रह्मको अपने आपमें देखते हैं अर्थात् भगवानमें लीन हो जाते हैं। जैसे दीपककी ज्योति सूर्यमें लीन हो जाती है। नदी जाकर समुद्रमें मिल जाती है।

भगवान कहते हैं ऐसे ज्ञानी विश्वमें दुर्लभ हैं। ज्ञानी जहाँ कुछ भी बोलता है ब्रह्मज्ञान की ही बात करता है, उसका सब व्यवहार ब्रह्ममय होता है। ऐसे ज्ञानी अति दुर्लभ हैं।

—: ॐ तत्सत् :—

संग्रहकर्ता—सरदार शाह सलुजा
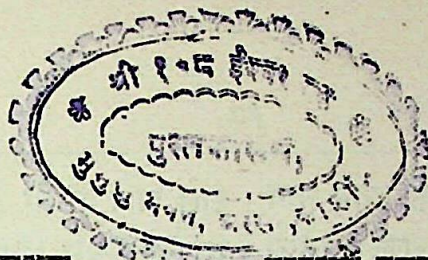
मनएव मनुष्याणाम् कारणं बन्ध मोक्षयोः

हममेंसे हर एक चाहता है कि मुझे दुःखों से छुटकारा मिले, आजादी मिले, मैं जन्म-मरण के चक्रसे मुक्त हो जाऊँ, मैं स्वाधीन बनूँ, मुझपर कोई बन्धन न हो। किन्तु प्रश्न है कि हमें कष्ट क्यों प्राप्त होते हैं? हम बँधे क्यों हैं? हमें किसने बाँधा है तथा हम मुक्त कैसे हो सकते हैं?

वेद तथा संसारके महापुरुष पुकारकर कहते हैं कि वस्तुतः तुम्हें तो कोई दुख कष्ट है ही नहीं; तुम अपने लिये दुःख स्वयं रचते और दुखी बनते हो। बन्धन भी तुम्हारे वास्तविक स्वरूपमें नहीं, बन्धन तुमने अपने लिए स्वयं ही समझ रखा है। तुम मुक्त हो, जिसे कोई बाँध नहीं सकता। एक बन्दर एक संकीर्ण मुँह वाले मटकेमें (जिसमें देखनेमें अच्छे फल भरे रहते हैं) हाथ डालता है, उसमेंसे मुट्ठी भरकर बाहर निकालता है, किन्तु भरी हुई मुट्ठी उस तंग मुखसे बाहर निकल नहीं सकती। वह हाथ निकालनेकी बड़ी कोशिश करता है, किन्तु निकाल नहीं सकता और चिल्लाने लगता है, तड़पने लगता है, परन्तु छुटकारा नहीं पाता। और परिणाम यह होता है कि जिस आदमीने बन्दरको पकड़नेके लिये फलोंसे भरा हुआ वह मटका रखा था, वह आकर उस बन्दरको पकड़ ले जाता है। इस तरह बन्दर स्वयं ही बँध जाता है। बन्दर असलमें तो स्वतन्त्र था, किन्तु लोभ वश उसने अपने आपको बँधा लिया। यदि वह अपना भरा हुआ हाथ मटकेसे बाहर नहीं निकाल सकता था, परन्तु वह मुट्ठी खोल देता तो उसका हाथ बाहर निकल आता और वह अपनेको नहीं बँधाता। वैसे ही मनुष्य तो वास्तवमें स्वतन्त्र है, मुक्त है, किन्तु संसारकी सुन्दर वस्तुओंमें आसक्त होकर बन्दरके समान अपने आपको बँधा देता है और दुःख भोगता है।

एक महात्मा जंगलमें रहा करते थे। उनके समीप एक राजाकी राजधानी थी। राजा अच्छे संस्कारों वाला था। महात्माजी रोज नगरमें राजाके पास जाया करते थे। इस तरह कई वर्ष बीत गये। राजा समझता था कि विषयोंमें लोलुप होकर मैं दुःख भोग रहा हूं और वह महात्माको कहता था कि "मैं क्या करूँ? मैं तो चाहता हूँ कि मैं इन सबसे छुटकारा पाऊँ, किन्तु बन्धनोंने मुझे बाँध रखा है।"

अब महात्मा जो राजाका सच्चे हितैषी थे, उन्होंने सोचा कि इस तरह राजाका कल्याण नहीं होगा। अतः और कोई उपाय करूँ। यह सोचकर उन्होंने राजाके पास जाना बन्द कर दिया।

राजाकी महात्मामें पूर्ण श्रद्धा थी। कुछ दिन महात्माके न आनेपर राजाको चिन्ता हुई कि या तो महात्मा रुग्ण हैं, अथवा मुझसे रुष्ट

हैं। इसलिए नहीं आते, अतः मुझे उनके पास जाना चाहिये। यह विचारकर राजा उनकी कुटिया की ओर चल पड़े।

महात्मा अपनी कुटीके बाहर बैठे थे। राजाको दूरसे आता हुआ देखते ही वे दौड़ कर समीपवर्ती एक वृक्षको अपनी बाहोंसे घेर कर चिल्लाने लगे—"वृक्षने मुझे बाँध रखा है, कोई है, जो मुझे उससे छुड़ा ले।"

राजा महात्माकी चिल्लाहट सुनकर दौड़े, वहाँ पहुँचे और देखा कि महात्माजी स्वयं पेड़ को पकड़े हुए हैं, और चिल्लाते हैं कि पेड़ने मुझे पकड़ रखा है और अपनी मूर्खताके कारण चिल्ला रहे हैं कि कोई मुझे छुड़ावे। अतः राजा बोले—"स्वामिन्! आपने ही तो वृक्षको पकड़ रखा है। अपनी भुजाओंको खोल दें तो आप छूटे हुए हैं।"

महात्माजी अपनी बाहें खोलते हुए हँस कर कहने लगे—"आप सदैव मुझसे कहते हैं कि मुझे संसारके बन्धनोंने बाँध रखा है और वे मुझे छोड़ते नहीं। आपने ही तो उनको पकड़ रखा है। मेरी तरह उनको पकड़ने वाले आप ही तो हैं। आप उन्हें छोड़ दें, तो आपके बन्धन और उनके साथ चिन्तायें, दुःख और कष्ट दूर हो जाँय।"

यह उदाहरण हमें बताता है कि हम ही दुःख और सुख, बन्धन अथवा मुक्ति के कारण हैं। "मनएव मनुष्याणाम् कारणं बन्ध मोक्षयोः।" हम अपनेको अपूर्ण समझ कर अभिलाषाओंके कारण अपनी आवश्यकतायें बढ़ाते जाते हैं और उनके फन्देमें अपने आप को बाँधकर दुःखी होते हैं। हमें कबीरकी यह उक्ति याद रखनी चाहिए—

"चाह गई चिन्ता मिटी, मनुआ बेपरवाह।
जाको कछू न चाहिए, सोई शाहन्शाह॥"

यह बात निश्चय करके अगर हम जीवन तदनुसार बनायेंगे, तो हमारे लिए कोई बन्धन नहीं रहेगा और जीवन मुक्त रहेंगे; तब हम स्वामी रामतीर्थ आदि ऋषिगणोंके समान अपने को विश्वका शाहनशाह (सम्राट) समझ कर विचरेंगे।

"तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।"
जान्यो अपने आप जब, शोक-मोह भये नाश।
धुन्ध अन्धेरा नस गये, कीन्हों रवी प्रकाश॥

धर्मके नामपर आज ढोंग और दम्भका पार नहीं रहा है। परमात्माको, उसके नामको और उसके दिव्य धर्मको भुलाकर जगत् आज ऊपरकी बातोंमें ही लड़ रहा है। इसीलिए न तो आज धर्मकी उन्नति होती है और न कोई सुखका साधन ही दीखता है। लोग समझते हैं कि ईश्वर केवल उनके निर्देश किए हुए स्थान और नियमोंमें ही आबद्ध है, अन्य सब जगह तो उसका अभाव ही है।
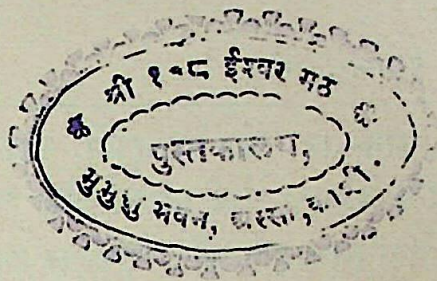
महाप्राण जिनकी जन्मशती मनाई जा रही है

महामना प० मदनमोहन मालवीय

ले०—सतीश कुमार मौर्य्य

पं० मदनमोहन मालवीय जीके जन्मभूमि होनेका सौभाग्य उत्तर भारतके प्रमुख तीर्थ प्रयागको प्राप्त है। पण्डित प्रेमधरजी प्रयागके परम भागवत भक्त थे। भगवान श्री राधाकृष्ण की आराधना करना ही उनके जीवनका एक मात्र प्रधान कार्य था। भगवानको कभी माला पहनाना, कभी भोग लगाना, कभी आरती उतारना, कभी मतवाले होकर उनके सामने नाचना, और कभी स्तोत्रपाठ करना, बस, इन्हीं कामोंमें वे लगे रहते थे। उनके घरमें भगवान्की दो फुट ऊँची साँवले रंगकी सुन्दर मूर्ति थी। प्रेमधरजीने एक बार १०८ दिनोंमें श्री मद्भागवतके १०८ पाठ किये थे। इनके पुत्र पंडित ब्रजनाथजी भी परम भागवत थे और भगवान् श्री राधाकृष्णके अनन्य भक्त थे। बड़ी सुन्दर भागवतकी कथा कहा करते थे। पण्डित ब्रजनाथजीके छः पुत्र और दो कन्याएँ कुल आठ सन्तानें हुईं। इनमें पाँचवी संतान हमारे महामना पंडित मदनमोहन मालवीयजी थे। इनका जन्म सं० १९१८ विक्रमीय पौषकृष्ण अष्टमीको प्रयागमें हुआ था।

श्री मदनमोहनजीने अपने परम भागवत, श्री राधाकृष्णके अनन्य भक्त, दैवी सम्पत्ति-सम्पन्न पितामह और पितासे भगवान्की भक्ति और दैवी सम्पत्तिको उत्तराधिकारके रूपमें प्राप्त किया था। मालवीयजीके पवित्र और आदर्श जीवन पर जितना लिखा जाय थोड़ा है। इस प्रकारके पवित्र चरित्र महापुरुषोंके स्मरणसे ही चित्तमें पवित्रता आती है।

देशका और धर्मका ऐसा कोई कार्य नहीं, जिसमें मालवीयजीने भाग न लिया हो। हिन्दू-विश्वविद्यालय तो आपकी अमर कीर्ति है ही; पर आपने जो लाखों करोड़ों देशवासियोंके हृदयोंमें अपने पवित्रतम, उज्ज्वल, धर्म-भक्ति पूर्ण जीवनके आदर्श भर दिये हैं, उनका मूल्य कोई आँक नहीं सकता।

विनय और नम्रताके साथ असीम दृढ़ता, सदाचारकी कट्टरताके साथ उदारता,

खान-पान और वेष-भूषामें जीवनके आरम्भसे लेकर अन्त तक परिवर्तनहीन आचरणके साथ विभिन्न प्रकृति और पद-पदपर आचार परिवर्तन करनेवाले लोगोंके साथ प्रेमपूर्ण सहयोग, एक चींटीकी हत्या देखनेमें भी दुःखका अनुभव करनेवाले कोमल हृदयके साथ आततायीके बध को धर्म स्वीकार करनेवाला बज्रहृदय, एकताके पूर्ण पक्षपाती होनेके साथ ही सनातनधर्म, आर्य संस्कृति और भारतीय आदर्श पर मर-मिटनेकी शिक्षा-दीक्षा, बुद्धिवादके महान आदर्श होनेके साथ-साथ श्रद्धा भक्तियुक्त तथा पितृ परम्परागत आचरणोंके प्रति आदर, अधिक क्या, साधुतापूर्ण दैवी सम्पत्ति और पवित्र-नीतिके प्रायः सभी गुणोंका एकत्र प्रत्यक्ष आचरणगत समावेश देखना हो तो मालवीयजीके जीवनकी पुण्यमयी झाँकी करनी चाहिये।

भगवान्‌के प्रति इनकी कितनी आस्तिकता थी, इसका पता व्याख्यानोंसे नहीं—मालवीयजी के व्यक्तिगत घरेलू आचरणोंसे लगता है। अपने विपत्तिग्रस्त पुत्रको घरेलू पत्रमें आप लिखते हैं—"विपत्तिसे त्राण पानेका सर्वोत्तम उपाय है—"भगवान्‌की शरणागति'। भगवान् ने गीतामें कहा है—

'मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रासादत्तरिष्यसि।'

तुम मुझमें मन लगाओ। मेरी कृपासे समस्त संकटोंसे तर जाओगे।" एक बार अपने एक पुत्रको तारमें आपने लिखा था, श्रीमद्‌भागवतके आठवें स्कन्धके तीसरे अध्यायका आर्त्त होकर पाठ करो। सारे संकटोंसे अवश्य छूट जाओगे।'

एक बार बम्बईमें एक विद्वानने उनसे कहा—'मालवीयजी! आप मुझे सौ गाली दीजिए—मुझे क्रोध नहीं आयेगा।' मालवीयजी ने हँसते हुए कहा—"महाराज! आपके क्रोध की परीक्षा तो पीछे होगी, पर मेरी जबान तो पहले ही गन्दी हो जायगी।'

एक दिनकी बात है, प्रयागमें घण्टाघर की ओर जा रहे थे। पथकी एक रुग्ण भिखारिन का आर्तनाद उनके कानोंमें पहुँचा ही था कि मालवीयजी उसके समीप बैठ गये और उसकी पीड़ाके सम्बन्धमें उससे प्रेमपूर्वक प्रश्न करने लगे। श्रीमालवीयजीका वहाँ बैठना था कि थोड़ी ही देरमें पर्याप्त भीड़ एकत्र हो गयी और उसके टीनमें पैसे पड़ने लग गये। आपने तुरन्त एक्का मँगवाया और उस असहाय भिखारिनको उसपर बैठाकर अस्पतालकी ओर चल पड़े।

मालवीयजीका सारा जीवन भारतवर्ष, सनातन-धर्म और हिन्दू-जातिकी सेवामें बीता। वे जीवनके प्रभातकालसे ही मानवताकी रक्षा और समृद्धिकी चिन्तामें लगे थे।

काशीका हिन्दू-विश्वविद्यालय उनकी अमीर कीर्तिका उद्घोष करता है।

श्रीमालवीयजी संवत् २००३ वि० की मार्ग शीर्ष कृष्ण ४ को दिनमें ४ बजकर १३ मिनट पर काशीधाममें भगवान् विश्वनाथके चरणोंमें समा गये।

भारतके कोटि-कोटि हृदय अधीर और नेत्र अश्रुपूरित हो गये।

—:०:—
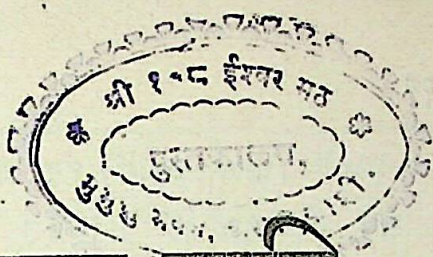
भगवत प्राप्ति

ले०——सूर्यदेव वर्मा, वाराणसी

प्रत्येक मनुष्यकी यह स्वाभाविक इच्छा होती है कि दुखसे छुटकारा पाकर सुख प्राप्त करें और वह सुख नित्य हो और उसके प्राप्तिके साधनमें रात-दिन बराबर प्रयत्न करता रहता है। परन्तु सुख और दुखका यथार्थ ज्ञान न होनेसे दुखदायक वस्तुओंको सुखदायक समझ कर दुख उठा रहा है। ईश्वर, जीव और प्रकृति के गुण, कर्म और स्वभावका ठीक ज्ञान न होने से पारसरूपी मनुष्यजीवनको पशुओंकी तरह पेट पालने तथा सांसारिक वस्तुओंके इकट्ठा करनेमें जो वास्तवमें अनित्य और दुखदाई हैं, नष्ट कर रहा है—अधिकांश मनुष्योंको नित्य और अनित्यका विवेक न होनेसे वे ऐसे मार्ग के पथिक हो गये हैं कि जहाँ उनको क्षण भर को सुख शान्ति मिलना कठिन है और उन लोगोंने उस परमपिता परमात्माको जो सर्व दुखोंसे छुटकारा दिलानेवाला है, ऐसा भुला दिया है कि आज परमात्माके स्वरूपको ठीक-ठीक जानने वालोंकी संख्या बहुत कम हो गई है।

इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे मनुष्य भी हैं जो ईश्वरके गुणोंका वर्णन करनेके बजाय उसको एक देशीय और परिछिन्न बताकर उसकी निन्दा करते हैं। कोई उस सर्व शक्तिमान प्रभुको जो देश, काल व वस्तुके परिच्छेदसे रहित है आकाशके कोठेपर सुरक्षित कर रखा है और कोई उस पवित्र महान आत्माको भक्तोंपर दया दिखानेवाला बता रहा है और कोई जीव ब्रह्म और प्रकृतिकी सत्ता स्वीकार कर रहा है। चारों ओर ईश्वर और जीवके सम्बन्ध में ऐसा अन्धेरा छा रहा है कि जब तक ईश्वर व जीव के स्वरूपका ठीक-ठीक बोध न हो जावे तब तक कोई मनुष्य सुख और शान्ति, जिसकी उसको जगतमें तलाश है, प्राप्त नहीं कर सकता, लक्ष्य स्थान तक पहुँचनेका कहना ही क्या है।

दुख और सुखकी वास्तविकताका जिनको ज्ञान नहीं है वे ही अविवेकी जीव स्त्री, पुत्र व धनादि अनित्य पदार्थोंमें सुख मानते हैं और जिनको इनकी वास्तविकताका बोध है वे इनको सुख माननेके बजाय दुख ही मानते है क्योंकि जगत और जगतका विषय परमात्माकी प्राप्तिके मार्गमें बहुत बड़ा रोड़ा है और जीव पारस रूपी मानव शरीरका, जो देवताओंको भी दुर्लभ है, सदुपयोग करनेके बजाय दुरुपयोग कर रहा है जिसका परिणाम यह हो रहा है कि उन्नत करनेके बजाय दिनपर दिन नीचे गिरता चला जा रहा है—ऐसी दशामें उसको वांछित सुख और शान्ति कैसे प्राप्त हो सकती है। अतएव मानव मात्रका यह परम कर्तव्य है कि आत्मा और अनात्माका विवेक शास्त्रों तथा सत्संग द्वारा प्राप्त करें और जब विवेक ठीक-ठीक हो

जाय तो आत्मामें राग और अनात्मा वस्तुका त्याग करै परन्तु यह आसान नहीं है क्योंकि अनात्म वस्तुओंमें आसक्ति अनादि कालकी है। अनात्म वस्तुओंमें दोषदृष्टि तथा वैराग्यसे आसक्ति दूर हो सकती है—इस प्रकारका अभ्यास निरन्तर करनेसे मानव अपने लक्षित स्थानपर पहुँच सकता है। इस मंजिलपर पहुँचनेका सरल उपाय भगवान कृष्णने गीतामें निष्काम कर्मयोग बताया है क्योंकि निष्काम कर्मयोग तथा उपासनासे ही अंतःकरणकी शुद्धि तथा मन की स्थिरता हो सकती है क्योंकि इन्हीं दो की प्राप्तिके पश्चात् ज्ञानरूपी फलका मानव अपने हृदयमें अनुभव कर सकता है। "जीव और ईश्वरके स्वरूपमें उपाधि कृत भेद है स्वरूपतः अभेद है।"

देहात्मज्ञानवज्ज्ञानं देहात्म ज्ञानवाधकम्,
आत्मन्येवभवेद्यस्य स नेच्छन्नपि मुच्यते।।

अर्थात् मैं ब्रह्म हूँ, इस प्रकार जिसकी आत्मामें (अपने आपमें) दृढ़ ब्रह्म बुद्धि हो जाय, वह मुक्त हो जाता है। देहमें आत्म-बुद्धि होना ही पतनका सबसे बड़ा कारण है विषयोंमें दोष दृष्टि रखता हुआ अपने शरीर सहित सम्पूर्ण नाम, रूप प्रपञ्चको स्वप्नकी भाँति मिथ्या समझता हुआ तथा बार-बार इस निश्चयको दोहराता हुआ स्थूल, सूक्ष्म व कारण शरीरों का साक्षी अपने आपको मानना ज्ञान है। शरीर इन्द्रियोंके धर्मोंको आत्माका धर्म मानना अज्ञान है। बार-बार ऐसा अभ्यास करनेसे मनके विकार नष्ट हो जाते हैं और संसारसे राग हटकर परमात्मामें राग हो जाता है। परन्तु अनादि कालका राग जो अनात्म वस्तुमें हो गया है उसको हटानेके लिये श्रोत्रिय ब्रह्म-निष्ठ गुरुकी शरणमें जानेकी अत्यन्त आवश्य-कता है क्योंकि आत्म साक्षात्कारके लिये शास्त्र नाव और गुरु मल्लाहका काम देता है क्योंकि जो पार जा चुका है वही पार पहुँचा सकता है, यदि नाव मिल भी जाय तो बिना मल्लाह पार होना असम्भव है। रामायणमें आया है—

"बिन गुरु भवनिधि तरै न कोय,
जौ विरंच शंकर सम होय।"

जिनको दुखकी अत्यन्त निवृति और सुखकी प्राप्तिकी अभिलाषा जाग्रत हो चुकी हैं उनको केवल एक ही कर्तव्य रह जाता है कि सर्व कर्मोंका त्याग करके ज्ञानका साधन जो वेदान्त है उसीका गुरु मुख द्वारा श्रद्धा भक्तिसे श्रवण करैं, क्योंकि कर्म या उपासना मोक्षका हेतु नहीं है केवल ज्ञान ही अज्ञानका नाश

सब कुछ भगवानका है ऐसा समझकर सिद्धि असिद्धिमें समभाव रखते हुए आसक्ति और फलकी इच्छाका त्यागकर केवल भगवानके लिए ही समस्त कर्मोंका आचरण करना। सम्पूर्ण पदार्थ मृग तृष्णाके जलकी तरह अथवा स्वप्नके संसारकी तरह मायामय होनेके कारण मायाके कार्यरूप सम्पूर्ण गुण ही गुणोंमें वर्तते हैं ऐसा समझकर मन, इन्द्रिय और शरीर द्वारा होने वाले समस्त कर्मोंमें कर्तृत्वाभिमानसे रहित होकर सर्वव्यापी सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें एकीभावसे नित्य स्थित रहना ही गीताका निष्काम कर्मयोग और सांख्ययोग है।

करनेमें समर्थ है। जैसा कि रामगीतामें भगवान रामने लक्ष्मणजीको उपदेश किया है।

'ना ज्ञानहानिर्न च राग संक्षयो,
भवेत्ततः कर्म सदोषमुद्भवेत।
ततः पुनः संसृतिप्यवारिता,
तस्माद् बुधो ज्ञानविचारवान्भवेत" ॥

अर्थात् कर्म द्वारा अज्ञानका नाश अथवा रागक्षय नहीं हो सकता, बल्कि उससे सदोष कर्मकी उत्पत्ति होती है, उससे पुनः संसारकी प्राप्ति होना अनिवार्य है। इसलिये विचारवान को ज्ञान विचारमें ही लगा रहना चाहिए—स्वामी रामतीर्थ महाराज कहते हैं।

"दसवाँ ग्रह अध्यास है, नौ ग्रहका जो मूल।
जब लग देह अभिमान है, तब लग मिटै न सूल।
तब लग मिटै न सूल, करे केती चतुराई।
देव यजे, जप यजे, न सुर कोई होत सहाई।
ज्ञान दृढ़ देवे चश्मा,
मूल अविद्या नाश होवे,
ग्रह रहे न दसवाँ।

सारांश लिखनेका यह है कि जो आनन्द सुधासिन्धु परमात्मासे अपनी आत्माका अभेद नहीं कर लेता वह आवागमनके चक्रमें भटकता रहता है। जैसे जो प्यासा मृग नदीकी ओर पानीकी तलाशमें दौड़ता है उसको पानी मिल जाता है और वह तृप्त हो जाता है और जो प्यासा मृग नदीको नहीं जानता और पानीकी खोजमें बालूके मैदानको पानीसे भरी हुई नदी जानकर उसकी ओर दौड़ रहा है वह पानीको प्राप्त करनेके बजाय भटक-भटककर मर जायगा। जैसे वे दोनों प्रकारके प्यासे मृग पानीकी तलाशमें दौड़ लगा रहे हैं उसी प्रकार अज्ञानी व ज्ञानी सभी जीव परमपिता परमात्माके उपासक हैं परन्तु जब तक परमात्माके स्वरूपका ठीक-ठीक ज्ञान नहीं हो जायगा तब तक मोह, संशय, भ्रम नाश नहीं हो सकेगा और जब तक मोह संशय और भ्रमकी अत्यन्त निवृत्ति न होगी तब तक परमानन्दकी प्राप्ति असम्भव है।

—:०:—

परमात्मा का अपमान

किसी दूसरेके धर्म पर किसी प्रकारका आक्षेप न कर ईर्ष्या, वैमनष्य और प्रतिहिंसा आदि कुभावोंका परित्याग कर संसारमें सबको सुख पहुँचाते हुए परमानन्दमें विचरना चाहिए। जो लोग अपने धर्मको पूर्ण बतलाकर दूसरेके धर्मकी अपूर्णता सिद्ध करते हैं। वे वास्तवमें परमात्माके तत्वको नहीं जानते। यदि मैं एक धर्मका विरोध करता हूँ, उस धर्मको भला-बुरा कहता हूँ तो दूसरेके द्वारा मुझे अपने धर्मके लिए भी वैसे ही अपशब्द सुनने पड़ते हैं। इससे मैं उसके साथ ही अपने धर्मका भी अपमान करता हूँ। क्योंकि ऐसा करनेमें मुझे अपने ईश्वरको और धर्मको सर्वव्यापी और सार्वभौम पदकी सीमासे संकुचित करना पड़ता है। किसी न किसी अंशमें सभी धर्मोंमें परमात्माका भाव विद्यमान है, अतएव किसी भी धर्मका तिरस्कार अपमान करना अपने ही परमात्माका अपमान करना है।

१३ दिसम्बर को जिनकी जयन्ती मनाई गई

नरसी मेहता

पन्द्रहवीं शताब्दीमें नरसी मेहता गुजराजके एक बहुत बड़े कृष्ण भक्त हो गये हैं। उनका जन्म जूनागढ़ राज्यमें हुआ था। उनके भजन आज भी श्रद्धा और आदरसे गाये जाते हैं। उनका निम्नलिखित भजन गाँधीजीको बहुत प्रिय था—

वैष्णव जण ते तेंणें कहिए
जे पीर पराई जाणेंरे।

बचपनमें ही साधुओंका संग प्राप्त होनेसे उनके हृदयमें कृष्णभक्तिका उदय हुआ। वे बराबर साधुओंके साथ रहकर श्रीकृष्ण और गोपियोंकी लीला गाने लगे। यह घर वालोंको पसन्द नहीं आया। एक दिन भौजाईने ताना मारकर कहा कि 'ऐसी भक्ति उमड़ी है तो भगवान्से क्यों नहीं मिल आते ?' इसका नरसी पर जादूकी तरह असर हुआ। वे महादेवके पुराने मन्दिरमें जाकर उनकी उपासना और तपस्या करने लगे। तपस्या पूरी कर घर आये और अपने बाल-बच्चोंके साथ अलग रहने लगे। उनका दृढ़ विश्वास था कि श्रीकृष्ण मेरे सारे दुःखों और अभावोंको अपने आप दूर कर देंगे। क्योंकि भगवान्ने गीतामें कहा भी है—

अनन्यश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

कहते हैं, उनकी पुत्रीके विवाहमें जो रुपये और अन्य सामग्रियोंकी जरूरत पड़ी, भगवान्के अनुग्रहसे वे अनायास पहुँच गईं। पुत्र-पुत्रीके विवाह हो जाने पर नरसी निश्चिन्त हो गये और अधिक उत्साहसे कीर्तन करने लगे। कुछ दिन बाद जब एकाएक उनकी स्त्रीका देहान्त हो गया तब वे एकदम विरक्त हो गये और लोगोंको भगवद्भक्तिका उपदेश देने लगे। "भक्ति तथा प्राणिमात्रके साथ विशुद्ध प्रेम करनेसे सबको मुक्ति मिल सकती है" यही उनके उपदेशका सार था। उन्होंने घूम-घूमकर जनताके हृदयको कृष्णभक्तिसे प्लावित किया।

—:०:—

लोक संग्रह

महात्मा तत्वज्ञ महापुरुषका इस विश्वमें न तो कर्म करनेसे कोई प्रयोजन रहता है और न कर्मोंके न करनेसे ही कोई प्रयोजन रहता है, तथा सम्पूर्ण प्राणियोंमें भी इसका किञ्चिन्मात्र भी स्वार्थका सम्बन्ध नहीं रहता। तो भी उसके द्वारा केवल लोक हितार्थ कर्म किये जाते हैं।

आत्मतुष्टि के आठ साधन

१—सर्वशास्त्रों, माता, पिता, गुरु, आप्त पुरुषों, साधुजनों और उनके वचनोंमें आस्तिक बुद्धि रखना।

२—ईश्वरके पुत्र अथवा ईश्वरका स्वरूप जान कर सबको यथायोग्य, यथाशक्ति सेवासे प्रसन्न करते रहना।

३—प्रतिदिन समाहित चित्त होकर देवार्चना, सन्ध्या, बन्दन, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, समाधिका अनुष्ठान।

४—आत्मपरायण योगीजन महात्माओंका संग।

५—श्रद्धापूर्वक प्राणीमात्रकी सेवा करना।

६—प्रतिदिन भगवानके नामका जाप और उनकी पवित्र लीलाओंका कीर्तन और श्रवण करते रहना।

७—अर्थपरायण तामसीजन और इन्द्रियागम, विषयभोगपरायण तथा राजसी लोगोंके संगसे बचे रहना। और

८—उन लोगोंके अभिष्ट कर्मों तथा पदार्थोंका परित्याग करना।

आत्मतुष्टिके यही साधन हैं। आत्मतुष्टिके पैदा हो जाने पर ही एकान्त प्रीति पैदा होती है। इसके बिना पुरुषके लिए एकान्तवास अधिक लाभकारी नहीं होता। एकान्तवासकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको सदैव हरिनामस्मरण और हरिनामगुणानुवादका अभ्यास करना चाहिए। मन, बाणी और कर्मसे कभी किसीको पीड़ा न पहुँचाए। मन तथा इन्द्रियोंको विषयसंसर्गसे दूषित न करे। किसी प्रकारका कष्ट उपस्थित होने पर चित्तकी समताको दूर न होने दे। भगवान् मुरलीमनोहरके चरित्र सदैव सुनता रहे। उपर्युक्त इन सब नियमोंका पालन करनेसे ही निर्गुण ब्रह्ममें प्रेम पैदा होता है।

इन सत्साधनोंका अनुष्ठान करनेवाले महापुरुषोंमें सच्चिदानन्द स्वरूप निर्गुण ब्रह्मके लिए प्रीति उत्पन्न होती है, फिर वह पुरुष गुरुकी शरणमें पहुँचता है और सेवा, शुश्रूषा द्वारा गुरुकी कृपाका पात्र बनकर ज्ञानोपदेशका अधिकारी हो जाता है। सद्गुरुके उपदेशसे उसके हृदयमें परम वैराग्य और ज्ञानका उदय हो जाता है। उसी ज्ञान और वैराग्यके प्रकाशसे अविद्यान्धकारका ध्वंस हो जाता है और आत्मतत्त्वका जिज्ञासु ब्रह्मस्वरूपमें आत्माका साक्षात्कार कर लेता है। इसके अनन्तर जिस प्रकार काष्ठस्थ अग्नि प्रकट होने पर काष्ठको जलाकर निस्तत्त्व कर देती है, उसी प्रकार वह ज्ञान-वैराग्यका प्रकाश, विषयवासना, अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश आदि दोषोंके आधारभूत अन्तःकरणको आत्मसाक्षात्कारात्मक अग्निसे भस्मकर, पुरुषको सर्वप्रकारके बन्धनोंसे मुक्त कर देता है। जिस प्रकार स्वप्नके नाश हो जानेपर स्वप्नके द्रष्टा और दृश्यका

[शेष पृष्ठ ३० पर देखिये]

कार्तिक पूर्णिमाको जिनकी जयन्ती सर्वत्र मनाई गई

गुरु नानकदेवजी महाराज

गुरु नानकजीका जन्म वि० संवत् १५२६ में पंजाबके तालबन्दी नामक ग्राममें एक क्षत्रिय के घर हुआ था। आपके पिताका नाम कालू राम था। सबसे पहले नानकको जब ककहरा सिखानेके लिए गुरुजीके पास बैठाया, तब नानकने उनसे कहा कि 'आप मुझे ऐसी शिक्षा दीजिए, जिससे मेरे मायाका बन्धन टूट जाय।' इस समय नानककी अवस्था छै वर्षकी थी, गुरुने नानकको धमका दिया। इसके बाद एक दिन फिर नानकने गुरुजीसे कहा, 'आप जो धर्म करते हैं वह तो धर्मका ऊपरी रूप है, मनकी पवित्रता और इन्द्रियनिग्रहकी सबसे पहले आवश्यकता है। भगवान्‌की पूजा केवल भोग लगानेसे ही नहीं होती। सरल और शुद्ध चित्तसे भक्ति-पुष्पके द्वारा जो पूजाकी जाती है वही सच्ची पूजा है।'

नानकजी बचपन हीमें ध्यानका अभ्यास करने लगे थे और कई बार वे ध्यानकी अवस्थामें बहुत देर तक घर नहीं आया करते थे। एक दिन ध्यानके समय माताने उनसे भोजन करनेको कहा पर उन्होंने भोजन करना नहीं चाहा। माता पिताने सोचा कि लड़का बीमार हो गया। वैद्य बुलाये गये, नानकने वैद्यसे कहा—'महाशय! आप मेरी बीमारीको दवासे दूर करना चाहते हैं पर आपके अन्दर जो काम क्रोधकी बीमारी मौजूद है उसे हटाकर आप आत्माको स्वस्थ क्यों नहीं करते? मुझे कोई शारीरिक रोग नहीं है मेरे प्राण तो उस परमात्माकी प्राप्तिके लिए व्याकुल हैं मेरे लिए आप क्या उपाय करेंगे?'

एक बार पिताने समझाते हुए नानकसे कहा कि 'बेटा! तुम खेतीका काम करने लगो तो तुम्हें भी लोग निठल्लू न कहें और हमें भी आराम मिले।' नानकने नम्रतापूर्वक कहा—'पिताजी! मेरे खेतकी जमीन बहुत लम्बी चौड़ी है, उसमें मैंने भगवानके नामका बीज बो दिया है, बड़ी फसल होगी, मेरी इस खेतीमें जो फल फलेगा, उस फलको खाने वाले पुरुष परमशान्तिको प्राप्त होंगे।'

पिताने दूकान करनेके लिए कहा तो आप बोले—'संसारमें चारों ओर मेरी दुकानें हैं पर उनमें बाजारू माल नहीं हैं। मेरी दुकानमें

विवेक और वैराग्यका माल भरा है। इन चीजोंको जो लेंगे वह सहज हीमें भवसागरसे पार हो जायेंगे।'

नानककी बहिन बीबी नानकी उनको अपने ससुराल सुलतानपुर ले गयी और वहाँ अपने पतिसे कहकर नानकको नवाबका भण्डारी बनवा दिया। नानक यहाँ भी हरदम भजन, कीर्तन और साधु महात्माओंका संग किया करते थे। यहाँ नानक पर भण्डारके रुपये उड़ानेका लाञ्छन लगाया गया पर ईश्वर कृपासे हिसाब ठीक निकला। अन्तमें नानकने उस कामको भी छोड़ दिया और संन्यासी होकर घरसे निकल पड़े। इससे पहले ही उनके मनकी गति बदलने के लिये माता पिताने विवाह कर दिया था। श्रीचन्द्र और लक्ष्मीचन्द्र नानकके दो पुत्र भी हो गये थे। परन्तु स्त्री-पुत्र नानकका चित्त आकर्षित नहीं कर सके। बाला और मर्दाना नामक दो व्यक्ति नानकके साथ हो गये थे। इसके बाद नानकका सारा जीवन धर्म और भक्ति के प्रचारमें बीता। नानक निराकारके उपासक और राममंत्रके बड़े पक्षपाती थे। बड़ी बड़ी विपत्तियाँ नानक पर आयीं परन्तु नानकने अपने सिद्धान्त और प्रचारका कार्य कभी बन्द नहीं किया।

संवत् १५५७ वि०में आप मुसलमानोंके प्रधान तीर्थ मक्कामें पहुँचे। एक दिन रातके समय आप हजरत मुहम्मदकी कब्रकी ओर पैर पसारे सो रहे थे। मुसलमानोंने उत्तेजित होकर कहा—'इसे मार डालो यह खुदाके घरकी ओर पाँव पसारे लेटा है' इसपर नानकने बड़ी शांति से कहा 'भाई! जिस ओर खुदाका घर नहीं है उस ओर मेरे पैर कर दो।' कहा जाता है कि वे लोग बाबा नानकके पैर जिस ओर घुमाते थे उसी ओर मुहम्मदकी कब्र दीखती थी। अन्तमें उन लोगोंने नानकको महात्मा समझकर छोड़ दिया और उनसे पूछा कि 'तुम कौन हो?' नानकने कहा—

हिन्दु कहा तो मारिये, मुसलमान भी नाँय।
पंचतत्व का पूतला, नानक साडा नाँव॥

इसके बाद नानकजी मदीना, बगदाद, अलप्पो ईरान, हिरात, बुखारा होते हुए काश्मीर और स्यालकोट होकर संवत् १५७९ वि०में देश लौटे। इसी यात्रामें गुरु नानकके संगी मरदाना जीका ख्वारजूम नामक नगरमें देहान्त हुआ।

कहा जाता है कि करतारपुरमें एक दिन ध्यानमें मग्न नानकजीको भगवान्की ओरसे यह आज्ञा हुई कि 'नानक! मैं तुम्हारी स्तुतिसे बहुत प्रसन्न हूँ, तुम सदा मेरे नामकी घोषणा करके नर-नारियोंको मुक्तिके मार्ग पर आरूढ़ करते हो, तुम्हारे इस गीतको जो व्यक्ति सुनेगा और मानेगा उसकी मुक्ति होगी।" भगवान्की यह वाणी सुनकर नानकने अपनेको धन्य समझा। उस समय जो नानकजीने स्तुति की थी उसको उनके शिष्य अंगदजीने लिख लिया था। इसीको 'जपजी' अथवा 'आदि ग्रन्थ' कहते हैं। सिक्खोंका यह परमपूज्य धर्म ग्रन्थ है।

दो पुत्र होने पर भी गुरु नानकने उनसे अधिक योग्य समझकर अंगदको ही अपनी गद्दी पर बैठाया। गुरु नानक संवत् १५९६

[शेष पृष्ठ ४० पर देखिये]

मौलाना रूमके विचारमें ईश्वरका अस्तित्व

मौलाना रूमके विचार यद्यपि इस्लामसे संबंध रखते हैं तो भी वह इस योग्य नहीं कि उनकी उपेक्षाकी जाय। बात वास्तवमें यह है कि मौलाना कई विषयोंमें सर्वथा स्वतन्त्र होकर विचार करते हैं। यही कारण है कि अध्यात्म-विद्याके कई रहस्य खोलकर प्राचीन वैदिक ऋषियोंका स्मरण करा पाते हैं, हमारी इच्छा है कि मौलानाके उन विचारोंका जो कि उनकी मनस्वीमें सिद्धान्त रूपमें वर्णन किये गए हैं उल्लेख करें जिससे कि सर्वसाधारणको मालूम हो सके कि मौलाना कितने उच्च स्थान पर पहुँचे हुए ब्रह्मनिष्ठ महात्मा थे। निर्विवाद रूपसे इस बातको मानना पड़ता है कि मौलाना की अधिकांश बातें बिल्कुल भारतीय अध्यात्म विद्या और ज्ञानके आधारपर हैं।

ईश्वरका अस्तित्व

ईश्वरका अस्तित्व सिद्ध करते हुए मौलाना कहते हैं—लेखनी लिख रही है मगर हाथ छिपा हुआ है। घोड़ा दौड़ रहा है मगर सवारका पता नहीं। हाँ! बुद्धिमान यह समझ सकता है कि कोई भी क्रिया बिना कर्ताके नहीं हो सकती। यदि लेखनीके लिखने और घोड़ेके चलनेसे उनके चलाने वाले कर्ताका निश्चय हो सकता है तो सूर्य चन्द्रादिका संचालक भी कोई मानना आवश्यक है, बस वही ईश्वर है।

यदि तुम उसको आँखोंसे नहीं देखते हो तो क्या उसके किये हुए कर्मोंको भी नहीं देख सकते। बेशक वह छिपा है मगर उसके काम बिल्कुल जाहिर हैं।

शरीर जो हरकत करता है वह आत्माके कारण ही करता है, यदि तुम आत्माको नहीं देख पाते तो शरीरकी चेष्टासे ही अनुमान करो।

संसारमें नियम पाया जाता है इसलिये इस नियम या तरतीबका कोई ना कोई बुद्धिमान कर्ता होना चाहिये। मौलानाके शब्द ये हैं-'गर हकीमे नेस्तई तरतीब चीस्त' अर्थात् यदि संसारका कोई बुद्धिमान कर्ता नहीं है तो इसमें तरतीब क्यों पायी जाती है।

देखो, तीर प्रत्यक्ष है पर कमान छिपा है, पानी छिपा है पर झाग मालूम हो रहा है। वायु छिपा है पर आँधी प्रतीत हो रही है। क्या कहें जैसे आगसे चिनगारियाँ पैदा होती हैं वैसे ही ईश्वरसे यह संसार प्रकट हुआ है।

संसारका सर्वोत्कृष्ट पदार्थ सदा अप्रत्यक्ष-छिपा हुआ होता है। देखो शरीर प्रत्यक्ष है तो बुद्धि सूक्ष्म और छिपी है और आत्मा उससे भी अधिक उत्कृष्ट है और दिखाई नहीं देता तथा किसी इन्द्रियका विषय भी नहीं है।

२५ दिसम्बर जिनका जन्म दिन है

महात्मा ईशा मसीह
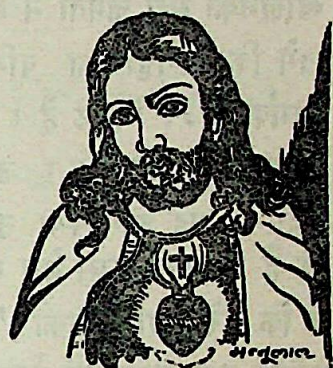
एशियाके पश्चिमी भागमें फिलस्तीन नामक एक देश है। महात्मा ईसाका जन्म इसी देशके बेथलेहम ग्राममें, आजसे १९५२ वर्ष पूर्व, हुआ था।

उनकी माताका नाम मरियम था और उनका विवाह जोसेफ नामक एक यहूदी बढ़ई के साथ हुआ था।

ईसाके जन्मकालमें हिरोद वहाँका राजा था। ईसाके जन्मके बाद फिलस्तीन देशसे पूर्वके कतिपय बुद्धिमान ज्योतिषी, बालकके दर्शनके लिए, जेरुसेलममें आकर पूछने लगे— 'यहूदियोंका राजा, जिनका जन्म हुआ है, वे कहाँ हैं ? क्योंकि हमने पूर्वमें उनका तारा देखा है और हम उनका अभिवादन करने आये हैं।' यह सुनकर हिरोद और उसके सारे साथी घबरा गये।

एक दूतने जोसेफसे कहा कि बालक को माताके साथ लेकर मिस्र देशको भाग जाओ और जब तक मैं न कहूँ, तब तक वहीं रहो। क्योंकि भय है कि कहीं हिरोद ढूँढ़कर बालक की हत्या न कर बैठे। इस आदेशानुसार वे अपने शिशु और पत्नीको लेकर रातोरात मिस्र चले गये और हिरोदके मृत्युपर्यन्त वहीं रहे।

ईसाके शब्दोंमें एक अलौकिक प्रतिभा थी। जब ईसा १२ वर्षके हुए तब उनके माता-पिता उन्हें जेरुसेलम ले गये। वहाँसे लौटते समय रास्तेमें वे कहीं खो गये। पता लगानेपर लोगोंने उन्हें जेरुसेलमके बड़े मन्दिरमें बड़े-बड़े विद्वानोंसे शास्त्रार्थ करते हुए पाया। बड़े होने पर ईसा अपने पिताका व्यापार करने लगे। आरम्भसे ही भगवान्में उनकी भक्ति थी। उन्हें प्रकृतिके प्रत्येक खेलमें, जीवनके प्रत्येक कार्यमें भगवान्की वाणी स्पष्ट सुनाई देती थी। उन्हें जब अवकाश मिलता, भगवान्के ध्यानमें मग्न रहते। उन दिनों जॉन नामक एक प्रतिभाशाली साधु थे। उन्होंने यह भविष्यवाणीकी थी कि एक ऐसा महान पुरुष प्रकट होने वाला है जो अग्निके द्वारा तथा भगवान्की दी हुई शक्तिसे लोगोंको शुद्ध करेगा। वह इतना

जब यह शरीरका नियन्ता आत्मा नित्य है तो इस आत्माका भी नियन्ता परमात्मा क्योंकर नित्य न होगा और वह संसारमें व्यापक होकर क्योंकर न इसका आत्मा होगा।

—:—

महान् होगा कि उसके जूतेके फीतेको भी खोलनेकी मेरी क्षमता न होगी। वे प्रचार करने लगे कि चित्तवृत्तिका परिवर्तन करो; क्योंकि स्वर्गका राज्य निकट है। कुछ काल बाद ईसा उनसे दीक्षा लेने गये। उन्हें देखकर महात्माने कहा—"यह आप क्या उलटी गंगा बहाने जा रहे हैं? आपके द्वारा मेरा संस्कार होना चाहिए, न कि मेरे द्वारा आपका।' परन्तु ईसाके जोर देनेपर उक्त महात्माने ईसाका संस्कार किया।

तीस वर्षकी आयुसे मरणपर्यन्त ईसाने धर्म-प्रचार किया। अनुयायियोंकी संख्यामें उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी। ईसाके प्रधान उपदेश संसारमें शैलोपदेश (पहाड़ परके उपदेश) के नामसे विख्यात हैं।

ईसाकी ख्याति चारों ओर बढ़ गई। इसलिए वहाँके पुरोहित उनकी तथा उनके अनुयायियोंकी हत्या करनेके लिए व्यग्र हो गये। ईसाको इसका आभास मिल गया। उन्होंने लोगोंसे कहा कि दो दिन बाद, पर्वके दिन, भोज होगा और अपने अनुयायियोंमेंसे एकके विश्वासघातके कारण वे सूली पर चढ़ाये जानेके लिये पकड़वाये जायँगे।

अन्तमें अपने साथी जूडाके विश्वासघातसे ईसा पकड़े गये। हाकिमने ईसाको कोड़े लगवाये और सूली पर चढ़ानेकी आज्ञा दे दी। जल्लादोंने ईसाके वस्त्र उतारकर उन्हें काँटोंका मुकुट पहनाया और बादमें वे सूली पर चढ़ाये गये। मरते समय ईसाने क्षमाकी जो अभय वाणी दी, वह विश्व इतिहासमें अपूर्व है। ईसाने सूली पर चढ़ते समय शान्त भावसे कहा—'भगवन्, इनपर क्षमा करना, ये बेचारे नहीं जानते कि क्या कर रहे हैं।' और अन्तमें—'हे पिता, यह आत्मा तुम्हें अर्पित है।' यह कहकर प्राण त्याग किया।

—:०:—

आत्मतुष्टिके आठ आधन

[पृष्ठ २५ कालम २ से आगे]

भी नाश हो जाता है, उसी प्रकार वासना तथा कर्तृत्वाभिमानसे युक्त अन्तःकरणका नाश हो जानेपर पुरुषको वाह्य-स्थूल जगत और अन्तर जगत सुख-दुःखके कारण प्रतीत नहीं होते। कारण अन्तःकरण ही द्रष्टा तथा दृश्यके व्यवहार का साधक है। आत्माके उपाधिभूत अन्तःकरण के होने पर ही पुरुष द्रष्टा, दृश्य और इन दोनों के सम्बन्धभूत अहंकारको देखता है। बिना अन्तःकरणके इन तीनोंकी प्रतीति हो नहीं सकती। यह लोक प्रसिद्ध बात है कि जल दर्पणादि निमित्तक समक्ष होने पर ही पुरुष बिम्ब और प्रतिबिम्बको देख सकता है। जलादिके सिवा बिम्ब, प्रतिबिम्बरूप भेददर्शनका और कोई उपाय नहीं। जबतक पुरुष आत्मसाक्षात्कारद्वारा अविद्याको नष्टकर अन्तःकरणको निस्तत्त्व नहीं बना देता, तबतक भेददर्शनका दूर होना अति कठिन है। भेददर्शनका नाश हुए बिना दुःखचक्रसे मुक्त होना असम्भव है। दुःखजालसे मुक्त होनेके लिए पूर्वोक्त नियमोंका पालन करना आवश्यक है। अन्तःकरण शुद्ध होने पर वैराग्य और ईश्वरप्राप्ति होती है और फिर गुरुकृपा द्वारा उपलब्ध ज्ञानाग्निसे वासनाओंको भस्म कर सर्वप्रकारके दुःखोंसे मुक्त और परमानन्दको प्राप्त हो जाता है। —०—
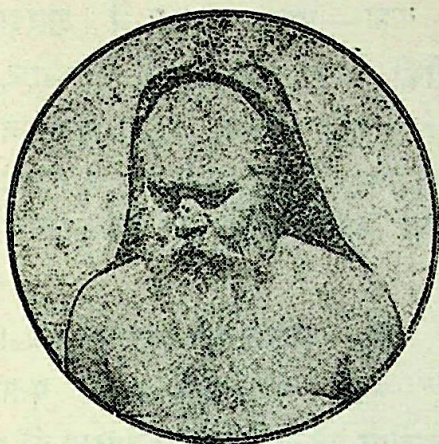
प्रतिवर्ष हरि प्रबोधिनी एकादशीको जिनका जन्मोत्सव मनाया जाता है।

बाबा शारदाराम उदासीन मुनिका संक्षिप्त जीवन-परिचय

गुरु-परम्परा !

(कवित्त)

उदासीनाचार्य श्री श्रीचन्द्र भगवान हुए,
भक्त भगवान, 'टीकाराम' को विचारिये।

तुलाराम, फतेचन्द, गुरु हरि मकरन्द,
धनुराम श्री सहजरामको निहारिये॥

संगतबकस बाबा माधोराम शुद्धराम,
मौजीरामजीको गुरु-गौरव बखानिये।

ऐसो उदासीन गुरु-परम्परा, में 'द्विजेन्द्र'
सद्गुरु बाबा 'शारदाराम' को प्रमानिये॥१

जन्मभूमि —ग्राम-कप्तानगंज, पत्रालय-तेरही, जिला-आजमगढ़, प्रान्त-उत्तरप्रदेश।

पिताजीका नाम—श्री गुलाबचन्द्रजी।

माताजीका नाम—श्रीमती शची देवी।

अग्रज—श्री अल्गूरामजी चौधरी।

जन्म-काल—संवत् १९४६ कार्तिक शुक्ल एकादशी रविवार प्रातः अरुणोदयके समय।

नामकरण—बचपनका नाम जलेश।

शिक्षा—स्कूली शिक्षा नाममात्र की, भाषाका साधारण प्रारम्भिक ज्ञान। दीक्षाके बाद गुरुसेवा और शास्त्रोंका श्रवण, पठन, अनुशीलन, गुरुके आशीर्वादसे तप, साधना, एवं अष्टांगयोग द्वारा शारदाकी सिद्धि।

पाणिग्रहण संस्कार—संवत् १९६१ में पिताकी आज्ञानुसार बाल-विवाह जलेशकी अनिच्छासे सम्पन्न हुआ।

पिताका स्वर्गवास—पाणि-ग्रहणके ६ मास बाद ही श्री गुलाब चन्द्रजीका स्वर्गवास।

वैराग्य—पिताकी मृत्युके बाद वैराग्य का पूर्ण उदय हो गया।

साधु-संगति—जलेशको प्रारम्भमें बाबा बन्हुदास, बाबा अविलाख दास, नागा बाबा आदि साधुओंकी संगति प्राप्त हुई।

पत्नी-पुत्रके बन्धनसे मुक्त—प्रसव कालमें ही जलेशकी धर्म-पत्नीका नवजात शिशु सहित प्राणान्त हो गया।

जमातमें—संवत् १९६३ में जलेश महंत राजारामजीकी जमातमें सम्मिलित हुए।

दण्ड—जमातमेंसे बलात घर लाकर चाचाजीने जलेशको कमरेमें तीन दिनतक बन्द कर दिया।

माताकी कृपा—शची माताने कृपा कर जलेशको कमरेकी कैदसे मुक्त करवाया और वैराग्य ग्रहणके लिये आज्ञा प्रदान किया।

गुरुदेव—परम पूज्य श्री १०८ मौजी रामजी महाराज, कर्णपुर, इटौरा।

आजा गुरु—परमपूज्य श्री १०८ शुद्धराम जी, अयोध्यापुरी, फैजाबाद।

दीक्षाकाल—सं० १९६४ कार्तिक पूर्णिमा को धनछुला ग्राममें अविलाख दासजीकी कुटीपर गुरुदेवने जलेशको उदासीन भेषकी दीक्षा दी।

नामकरण—वैरागी जलेशका नाम शारदा राम रखा गया।

गुरुदेवकी सेवा—१९६९ तक शारदाराम जी गुरुदेवकी सेवामें रहे।

आजा गुरुकी सेवा—संवत् १९७१ तक आजा गुरु श्री शुद्धरामजीकी सेवामें रहकर योगाभ्यास।

प्रथम यात्रा—संवत् १९७२ में शारदारामने गुरुजीकी आज्ञा लेकर काशी विश्वनाथ, प्रयागराज, चित्रकूट, उज्जैन, मथुरा वृन्दावन, हरिद्वार, ऋषिकेश, गुरुधाम, पशुपतिनाथ, काली माता कलकत्ता आदि तीर्थोंका दर्शन भ्रमण किया।

दूसरी यात्रा—दक्षिण-पश्चिम भारत की

तपोभूमि—संवत् १९७७ में आपने पू[illegible] स्थित रामटेकड़ीपर पहुँचकर घनघोर तपस्या की।

कीर्तिविस्तार—सं० १९८० में कंटका कीर्ण रामटेकड़ी उदासीनगढ़का रूप ले रही थी बाबाजीकी तपस्याके लिए 'सुख पंथ लो[illegible] गुफा' और शिव मन्दिरका निर्माण हो गया संवत् १९९६ में अनेकों मन्दिर और तपोभू[illegible] की रचना पूर्ण हुई।

तपोभूमिपर गुरुदेव—सं० १९८६में गुरुदे[व] मौजीरामजीका रामटेकड़ीपर पदार्पण हुआ।

आजा गुरुका अवसान—सं० १९८८ [illegible] आजागुरु श्री शुद्धरामजी ब्रह्मलीन हुए।

मातृ तीर्थका दर्शन—गुरुदेवकी आज्ञा[से] शारदारामजीने शची माताका जन्म भूमि प[र] दर्शन किया।

माताजीका अवसान—सन् १९४३ ई० [illegible] श्रीमती शती माताका स्वर्गवास हुआ।

गुरुदेव ब्रह्मलीन—सन् १९४४ ई० [illegible] गुरुदेव मौजीरामजी ब्रह्मलीन हुए।

जन्मभूमिपर कीर्ति विस्तार—कप्तानगंज [illegible] १९४५ ई० से सन् १९४९ तक उदासीनपु[र] नामसे पंच मंदिर। धर्मशीला पोखरा आदि का निर्माण हुआ।

लोक गीत बिरहा

बाबा शारदाराम चरित्र

श्री कल्पनाथ यादव ''कल्पू''

उत्तर भारतके लोकगीतमें ''बिहरा'' का अधिक प्रचलन है। श्री कल्पनाथ यादव रचित बाबाशारदारामजी महाराजके जीवनसे सम्बन्ध रखने वाला यह विरहा अत्यधिक मार्मिक और भावपूर्ण बन पड़ा है। पाठकोंकी निरन्तर माँगपर जयन्ती अंकमें यह गीत प्रस्तुत है। यदि इसको विरहाके स्वर-ताल और धुनपर पढ़ा सुना जाय तो विशेष आनन्दप्रद होगा। —सम्पादक

कहबै जनम कहानी, सुनिलऽ आदि अन्त से ज्ञानी,
जैसे बाबा कऽ भयल बा अवताऽऽर ॥
सपन में भोला दानी दिहलँऽ बरदनवाँ,
तब माता के समनवाँ खड़ेऽऽ।
झरखण्डे से चले हैं शंकर आधिरात निचलैया,
और माता जीके पहुँचे पास में आगे सुना गवैया।
तब माता के समनवाँ खड़ेऽऽ।
शिवजी माताजी से ऐसे कहें बयनवाँ,
तब माता के समनवाँ खड़े। सपन में भोला दानी दिहलँ बरदनवाँ
तब माता के समनवाँ खड़ेऽऽ।
जैसे वासुदेव देवकी के भगवन दें बरदान,
वैसे शिवजी माताजी से ऐसे कहें जबान।
तब माता के समनवाँ खड़ेऽऽ।
तोहरे हरी भक्त में होइहैं एक ललनवाँ,
तब माता के समनवाँ खड़े। सपन में भोला दानी दिहलँ बरदनवाँ,
तब माता के समनवाँ खड़ेऽऽ।
मुण्डमाल विकराल ज्वाल सब गुथ पहिरे गरदन में,

सबके भोला वर देला तुँ आप रहेला बन में।
तब माता के समनवाँ खड़ेऽऽ।
तोहरे दर्शन के मोर तरसेला नयनवाँ,
तब माता के समनवाँ खड़े। सपन में भोला दानी दिहलँ बरदनवाँ
तब माता के समनवाँ खड़ेऽऽ।
कल्पू कहैं बनाई गावैं गुरु चरन सिरनाई
नैया हमरो तू लगइहा बेड़ापाऽऽऽर।
जैसे बाबा कऽ भयलबा अवताऽऽऽर

बाबा क बयान करौं मैं दंगलके मैदान जेकर चलत दुनियामें बाटे नाऽऽऽम।
मौजा कप्तानगंजमें बाबा क मकनवाँ, जिला आजमगढ़ हऽ महराजगंज थनवाँ,
भइलँऽ बैरागी बाबा छोड़ दिहलँऽ वतनवाँ, बन्हुदासकी कुटी पर बाबा कइलँऽ पयनवाँ
सुनैं रमायन धइलँ शंकर पर धियनवाँ, तब वहाँ से कइलँऽ सरयू तीरे कऽ पयनवाँ
गइलैं सरयू तीरे जहाँ नागा कऽ स्थनवाँ, खुशी होके नागा बाबा दिहलँ बरदनवाँ
तोहार गुरु मिलिहैं तोहरे गौंआ के सम्हनवाँ, पाके बरदान बाबा फिर अइलँऽ भवनवाँ
होत भिनसहरा कइलैं पच्छू क पयनवाँ, गइलँ अतरौलिया सुनबऽ धैके अब धियनवाँ
राजाराम साधू क बाबा कइलैं दरसनवाँ, धइके बँहियाँ चाचा उनके ले गइलँऽ मकनवाँ
कोठरी अन्दर बन्द कइलैं ज्ञानी तौने छनवाँ, तीन दिन तक बन्द रहलँऽ ऐसन बा कथनवाँ
माता जीके दया लगलीं तब गइलीं समनवाँ, ताला खोलवउलीं कइलीं बाबा कऽ दरशनवाँ
दिहलीं दाना पानी बाबा कइलँ तब भोजनवाँ, होत भिनसहरा कइलँ जंगल क पयनवाँ
झरखण्डेमें बाबा गइलँ, कल्पू करेंऽऽ कथनवाँ, जेकर चलत दुनियाँ में बाटे नाम

बजे बजे हो डगरिया धइलँऽ चार बजेऽऽ। टेरी॥
बाबा जोगी बनके छोड़ेलँऽ नगरिया, डगरिया धइलँ चार बजेऽऽ॥
जैसे राजा भरथरी आपन छोड़ दिये रजधानी,
वैसे जलेश छोड़ें अपने घरवाँ केरि परानी हो ड० धइलँऽ चारबजेऽऽ॥
भइया भक्ति फन कऽ लग गइलींऽ फँसरिया डगरिया धइलँऽ चार
बजे॥ बजे बजे०॥
बाबा जोगी बनके छोड़लँऽ नगरिया डगरिया धइलँऽ चार बजेऽऽ॥
झरखण्डे के जंगल में बाबाजी ध्यान लगावें,
नारायण तब गये वहाँ पर बहुत तरह समझावें हो ड०ध०चारबजे॥

जोगिता कठिन बाटी, जो कुछ लिखा लिलरिया डगरिया धइलँ
चार बजे ॥ बजे बजे० ॥

बाबा जोगी बनके छोड़ेलँ नगरिया डगरिया धइलँ चार बजे ॥

उस जंगलमें रहते बाबा निश दिन वहाँ बितावैं,
महादेव औ पारबती तब दूनो जने बतियावै हो ड० ध० चार बजेऽऽ॥

ब्रह्मा लिखैं कलम से ज्ञानी अबकी परिया, डगरिया धइलँ चार
बजे ॥ बजे बजे० ॥

बाबा जोगी बनके छोड़ेलँ नगरिया डगरिया धइलँ चार बजेऽऽ॥

झरखण्डेसे चले भुड़कुड़ा चलल मोर कवितैया,
एहर नरायन माता जी के खूब समुझावें भइया हो ड० ध० चार बजे॥

तोहरे कुलके अन्दर ऊगलबा उजियरिया डगरिया धइलँ चार
बजे ॥ बजे बजे० ॥

बाबा जोगी बनके छोड़ेलँ नगरिया डगरिया धइलँ चार बजेऽऽ॥

पहिला नाम जलेश बा कल्पू की कवितैया,
दूसरा नाम शारदाबाबा आगे कहा गवैया हो ड० ध० चार बजेऽऽ॥

जेकर चलत दुनिया में बाटे नाऽऽम
बाबा कऽ भजनियाँ करवै हो सँझवाँ बिनहियाँ हमरे गाढ़े दिनवाँमें अइहैं काऽऽम ।

मन तुम खोजहु सद्गुरू साँचा

मन तुम खोजहु सतगुरु साँचा,
ऊँच दुकान देखि जनि भूलो,
यह पकवान है काँचा ॥

नाहक कान फुँकाय वेद विधि,
जब लग मन नहिं राँचा ॥
मन तुम खोजहु—

मिलत न वेद भेद सन्तन बिन,
बृथा नाच तुम नाचा,
दत्तात्रेय चौबिस गुरु कीन्हें;
जब लग मन नहिं राँचा ॥
मन तुम खोजहु—

कन फुक्का गुरु हदका बेहदका गुरु और ।
बेहदका गुरु जब मिले तब लगे ठिकाना ठौर ॥

तपोभूमि रामटेकड़ी

ले०—श्री हंसराजजी

संवत् १७७७के श्रावण अधिक मासमें बाबाजी रामटेकड़ीपर आये और हरिभजनमें मग्न रहने लगे। इस निर्जन पहाड़ीपर तभीसे जनता जनार्दनका आना जाना भी प्रारम्भ हुआ। दो महीनेके पश्चात् पितृ पक्षके दिनोंमें गुरु नानक देवजीके नामसे एक भंडारा आयोजित किया गया। जिस प्रकार भगवान् कृष्णने अवतरित होते ही अपने ईश्वरत्वकी द्योतक शक्तियोंका दिग्दर्शन आरम्भ कर दिया था उसी प्रकार बाबाजीने भी रामटेकड़ीपर बैठते ही वृहत भंडाराका आयोजन करके अपनी अलौकिक शक्तिका परिचय दिया।

माघ मासकी वसंत पंचमीसे बाबाजीने पंचधुना साधनका श्रीगणेश किया। ज्येष्ठ पूर्णिमा को यह तपस्या निर्विघ्न समाप्त हुई। इसकी पूर्णाहुतिके उपलक्ष्यमें भी एक शानदार भंडारा किया गया। उस समय बाबाजी युवावस्थामें थे। शरीर हृष्टपुष्ट एवं साधनाके योग्य था। बाबाजी ने नाना प्रकारकी तप-साधनायें कीं। बड़ा पद्मासन तथा छोटा पद्मासन लगाकर कभी-कभी दस-दस घण्टे तक बाबाजी आसनस्थ रहते थे। त्रिकाल भस्मिका प्राणायाम करते थे। सूर्य, चन्द्रमा, ध्रुव, पहाड़, मन्दिर पर लक्ष्य केन्द्रित करके बाबाजी त्राटक साधना किया करते थे।

साधनमें पूर्णरूपेण रत होकर बाबाजी आत्मिक शक्तिका संचय करने लगे। दर्शना भक्त रामटेकड़ीपर आने लगे और वचन लाभ पा पाकर अपने आपको कृतकृत्य समझ लगे। सम्वत् १७८४ सालमें शिव मन्दिरमें वि जमान हुए और तभीसे शिवरात्रि पर्वपर यहाँ मे लगना शुरू हुआ। जिस प्रकार भगवान् कृष्ण आठ वर्षकी अवस्थामें ही जनताके कल्याण गोवर्धन पर्वत उठानेका चमत्कार दिखाया था उ प्रकार बाबाजीने भी आठवें वर्षमें सनातन की वृद्धि एवं जनताके कल्याणार्थ रामटेक नामक पर्वतपर भव्य मन्दिर उठाकर अप शक्तिको प्रकाशित किया है। इस मन्दि "राम नाम" का जप करोड़ करोड़ दो हुआ है। एक बार "ॐ नमः शिवाय" मन्त्रका एक करोड़ जप मन्दिर कर्ताने करा था। बाबाजी इस पहाड़ीपर दो सौ दिन त उदासीनाचार्य मात्राका पाठ करते रहे। एक-ए पाठ प्रतिदिन बढ़ता रहा और इसका उतार इसी नियमके अनुसार किया गया। इसी प्रक चालीस दिनोंमें गुरु मन्त्रका सवालाख ज किया था। बीसों बरस तक पंचधुनाके म तपस्या करते हुए बाबाजी प्रतिदिन हजारों

संख्यामें गुरु मन्त्रका जप करते थे। ठण्डीके दिनोंमें शीतल जलमें खड़ा होकर जपजीका नित्य पाँच पाठ करते हुए बाबाजीने १२ वर्ष व्यतीत किया है। पहाड़ीके पूर्वकी ओर लगभग ८ फीट गहरी खाई है जिसमें ठण्ठीके दिनोंमें भी जल भरा रहता है। बाबाजी इसी खाईमें खड़े होकर जप किया करते थे। अपनी गुफामें एकान्तवास करते हुए बाबाजीने प्रतिदिन निर्गुण अभ्यासके अतिरिक्त सम्पूर्ण गीता, सुखमनी साहब,जपजी साहब, श्रीचन्द्रनामा, रहरास साहब इत्यादिका मुख पाठ ब्रह्ममुहूर्तमें तीन बजेसे लेकर दस बजे तक प्रतिदिन लगातार कई वर्षों तक करते रहे हैं। भगवत् विरहमें पूजापाठ एवं प्रेम प्रवाहका क्रम वर्षों तक अखण्ड रूपसे जारी रहा है। और इन्हीं सब तपस्याओं एवं साधनाओंके फलस्वरूप बाबाजी को ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति हुई है। इसके अतिरिक्त इस सुनसान पहाड़ीपर आज अनेकों इमारतें बन गई हैं। जिनमें श्रीचन्द्र मन्दिर, धर्मशाला, कोठार, भंडार, सन्त निवास; विठ्ठल मन्दिर, राममन्दिर, कृष्णमन्दिर, धूनामन्दिर, यज्ञमन्दिर, उदासीन मंदिर, गुरुनानक मन्दिर, गुफा मन्दिर, हनुमान मन्दिर, मुनिशारदाराम मन्दिर, कोठारी ब्रह्मदास मन्दिर, सत्संग भवनका विशाल हॉल, बारादरी, मुख्य द्वारके समीपका नया धर्मशाला आदि प्रमुख रूपमें उल्लेखनीय है। ये सभी इमारतें श्रद्धालु सज्जनोंने सेवा भावसे बनवाई हैं। किसीने सकाम भावसे तो किसीने निष्काम भावसे इनका निर्माण कराया है। कुछ इमारतें बाबाजीकी भेंट पूजामें प्राप्त रकमसे बनी हैं। गीताके ७वें अध्यायके २२वें श्लोकका विधान पूर्ण रूपसे फलित एवं प्रमाणित हुआ है :—

अनन्याश्चित यन्तोमां ये जनाः पर्युपासते
तेषां नित्याभियुक्तानां योग क्षेमं वहाम्यहम् ॥

इस श्लोकके अनुसार बाबाजी आज मुक्ति भुक्तिके केन्द्र बन गये हैं। प्रतिदिन सैकड़ों प्राणी प्रेमपिपासु बनकर लगातार आते जाते रहते हैं। बड़े-बड़े राजा महाराजा दर्शनोंके लिए आते हैं। कोल्हापुरके महाराजा सांगलीके राजासाहब, इदरके महाराजा, फलटनके राजा व रानी, ग्वालियरकी रानी साहिबा, कच्छ व लिबड़ीकी रानी साहिबा, बम्बईके गवर्नर साहब, मंत्री, जज्ज, कलक्टर, कर्नल, मेजर व कप्तान आदि उच्चाधिकारी यहाँपर आ चुके है।——

बाबाजीके जीवनकी झांकी (पृष्ठ ३८ कालम २ से आगे)

(७)

सेवामें बाबाने सुध-बुध भुलाई।
सेवासे निपटै समाधी लगाई।
समाधी खुली ज्ञान चर्चा चलाई।
बाबाने ऐसी दिनचर्या बनाई।
जो गुरुदेव कहैं झट बाबाने मानी।
गुरु चेला दोनों ही थे ब्रह्मज्ञानी।
शची माता...॥

[शिष्य सेवकोंके बाबाजी]

(८)

निर्गुण रामायण रचैया हैं बाबा।
भवसागरसे तरनेको नैया हैं बाबा।
हम सबके ही समझो खेवैयाहैं बाबा।
और मुक्तिका डंका बजैयाहैं बाबा।
हजारीदास कहैं मैं निश्चय यह जानां।
कि मुक्ति भी बाबाका भरती है पानी।
शची माता...॥
सच्ची माताकी भक्तीकी यह है निशानी।
जो बाबा बने हैं पूरण ब्रह्मज्ञानी॥

—:०:—

बाबाजीके जीवनकी झांकी

रचयिता–हजारीलाल, लालचन्द सलुजे–पूना

शची माताकी भक्तिकी यह है निशानी,
जो बाबा बने हैं पूरण ब्रह्मज्ञानी ।

(१)

इक दिन मन्दिरमें माताजी आईं
चटाई बिछाकर समाधी लगाईं ।
समाधीमें शिवजीने झांकी दिखाई ।
फिर शिवजीने माताको दीनी बधाई,
लो पुत्रके रूपमें मेरी निशानी,
जो मेरे सरीका होगा ब्रह्मज्ञानी ।
शती माता... ॥

(२)

पुत्र जन्मका समय जब था आया ।
माताको नींदका झोंका-सा आया ।
झोंकेमें शिवजीका दर्शन भी पाया ।
गोदीमें देखा तो लालको पाया ।
यह शिवजीकी माया किसीने न जानी
कि शिवजी सरीखा ही होगा यह ज्ञानी ।
शची माता... ॥

(३)

चहुँ ओरसे आने लगी अब बधाई ।
कोई चाची कोई मामी कोई बूआ कोई ताई ।
यह साक्षात शिवजी हैं कहती थी दाई ।
आकाशमें बजने लगी थी शहनाई ।
और सुननेमें आई थी आकाशवाणी ।
कि शिवजी सरीका ही होगा यह ध्यानी ।
शची माता... ॥

(४)

फिर दर्शनको आई थी सारी बजरिया ।
और बरसनको आई थी काली बदरिया ।
मस्तक पर माताने स्याही लगाई ।
कि इसको लगे न किसीकी नजरिया ।
फिर शिवजीकी बातोंको माता भुलानी ।
कि इसका न होगा कोई दुनियामें सानी ।
शची माता... ॥

(चाचाके कमरेमें बन्द करनेका दृश्य)

(५)

फिर चाचाने कमरेमें कर दिया बंद ।
भतीजेको कमरा ही आया पसंद ।
शची मां कहती क्यों करते हो बंद ।
अब जाने दो इसको हमें है आनंद ।
फिर माताकी आँखोंमें भर आया पानी ।
ये देखके चाचाने भी हार मानी ।
शची माता... ॥

(बाबा मौजीरामजीके आश्रमका दृश्य)

(६)

मौजीरामने आश्रमका नियम बनाया ।
सबेरे उठो ऐसा सबको बताया ।
जो सुस्तीमें रहा उसको चिमटा दिखाया ।
जो फिर भी न माने तो एक लगाया ।
फिर याद आती थी सबको ही नानी ।
जो नकली बने बैठे थे ब्रह्मज्ञानी ।
शची माता... ॥

[शेष पृष्ठ ३७ पर देखिये]

रामचरितमानसकी नवधाभक्ति
और
बाबा शारदाराम

ले०—पी० के० गुप्ता प्रभाती, पूना

⊙

भगवान राम कृष्णकी लीलाभूमि, सन्त महात्माओंकी प्रिय भूमि भारत देश आज भी अपनी परम्पराके अनुसार सन्तों और महापुरुषों से रहित नहीं है। उत्तर भारतकी उर्वरा भूमिने नानक, कबीर, पलटू, मलूक आदिकी श्रेणीका एक और देदीप्यमान रत्न प्रकाशित किया है। सन्तोंमें वाञ्छनीय समस्त गुणोंसे विभूषित, त्याग, तप एवं शंकरकी प्रतिमूर्ति बाबा शारदा राम उदासीनमुनि आज भी उत्तर और दक्षिण भारतको अपनी पावन अमृतवाणी एवं ज्ञानज्योति से कृतकृत्य कर रहे हैं। गतमास बाबाजीका ७२वाँ जन्मोत्सव सर्वत्र मनाया गया है। इस अवसर पर आदर्श सन्तोंके जीवन चरित्रका पठन-पाठन प्रेरणादायक सिद्ध होता है। बाबाजीका समस्त जीवन क्रियात्मक और साधन-सिद्धियोंसे पूर्ण है। कर्तृत्वाभिमान रहित जीवनमुक्त बाबाजीकी दिनचर्या एवं प्रत्येक कार्य लोक धर्म और शास्त्र की मर्यादाके अनुरूप लोक संग्रह मात्रके लिए ही होता है। बाबाजी उपदेश देनेसे पहले स्वयं आचरण करना चाहते हैं। साधारण जनताको भक्तिका उपदेश देनेसे अच्छा मार्ग यह है कि श्रेष्ठ लोग, अपने लिए अनावश्यक होते हुए भी लोक कल्याणके लिए उनका आचरण करें। इस लेखमें आप देखेंगे कि बाबाजीकी वर्तमान दिनचर्या और जीवन रामचरितमानसमें वर्णित नवधाभक्तिकी कसौटी पर कितना खरा उतरता है। आज भी हम आप्त पुरुषोंके संग और सद्-गुणोंके अनुकरणसे अपने जीवनको उज्ज्वल, पवित्र बना सकते हैं।

नवधा भक्ति कहौं तोहि पाही,
सावधान सुनु धरि मनमाही।
प्रथम भक्ति संतन कर संगा,
दूसर रत मम कथा प्रसंगा।

दोहा—गुरु पद पंकज सेवा,
तीसर भक्ति अमान।
चौथी भक्ति मम गुणगण,
करै कपट तजि गान॥

मन्त्र जाप मम दृढ़ विश्वासा,
पंचम भजन सो वेद प्रकाशा।
षट दश शील बिरति बहुकर्मा,
निरत निरन्तर सज्जन धर्मा।
सप्तम सब मोहिमय जग देखे,
मों ते सन्त अधिक कर लेखे ॥
अष्टम यथा लाभ संतोषा,
सपनेहु नहिं देखे पर दोषा।
नवम सरल सब सों छल हीना,
मम भरोस जिय हर्ष न दीना ॥

प्रथम भक्ति का प्रमुख लक्षण है सन्तोंका संग, जो बाबाजीको बचपनसे ही प्राप्त है। इस वृद्धावस्थामें भी स्वयं एक अत्यन्त उच्चकोटिके सन्त होने तथा साक्षात् भगवान् शंकरसे प्रतीत होनेके बावजूद भी बाबाजीको सन्तोंसे बड़ा प्रेम रहता है। दूर-दूरसे सन्त महात्मा आकर रामटेकड़ीपर ठहरते हैं और उनका यथायोग्य अतिथि सत्कार करनेमें कोई कसर नहीं रखी जाती। बाबाजी स्वयं इस बातका ध्यान रखते हैं कि किसी भी अतिथिको किसी प्रकारकी कोई असुविधा न होने पावे।

दूसरी भक्ति का लक्षण है कथा प्रसंगमें रत रहना। बाबाजीकी दिनचर्यासे यह विदित होगा कि प्रभुचर्चा, हरिकथाके सुनने और स्वयं अपनी विशेषता पूर्ण शैलीमें कहनेके कार्यमें बाबाजीका अधिकाधिक समय व्यतीत होता है।

तीसरी भक्ति है गुरु पद पंकज सेवा जो बाबाजीने अपने गुरुदेव बाबा मौजीरामजी महाराजके जीवनके अन्तिम क्षणों तक की है। आपने गुरुदेवके मन्दिरका निर्माण कराया है, ताकि सदैव उनकी पूजा होती रहे। निष्कपट भावसे भगवान्का गुणगान करना यह—

चौथी भक्ति है। प्रभुका गुणगान बाबाजी स्वयं तो करते ही हैं। अपने शिष्य सेवकों तथा अन्य लोगोंसे भी भजन कीर्तनके द्वारा हरिगुणगान करवानेके कार्यमें सदैव तत्पर रहते हैं।

पांचवी भक्ति है दृढ़ विश्वासके साथ मन्त्रोंका जाप। बाबाजी ॐ ब्रह्मके उपासक हैं। "योगियाज्ञवल्क्य" नामक योग विषयक ग्रन्थ में लिखा है कि—

अदृष्ट विग्रहो देवो भावग्राह्यो मनोमयः।
तस्योङ्कारः स्मृतोनाम तेनाहूतः प्रसीदती ॥

इन्द्रियोंसे परे अदृश्य विग्रह युक्त परमेश्वर, भावाग्राह्य और मनोमय है। उसका नाम ॐ है और इसी नामसे पुकारे जानेपर वह प्रसन्न होता है। बाबाजीको ॐ नामसे बड़ा प्रेम है।

गुरु नानकदेवजी महाराज

[पृष्ठ २७ कालम २ से आगे]

वि० आश्विनके महीनेमें लगभग ७० वर्षकी अवस्थामें उपस्थित भक्त मंडली द्वारा होनेवाली परमात्माके नामकी दिग्दिगन्तव्यापिनी ध्वनि को सुनते और भगवान्का 'नाम' स्मरण करते हुए सदाके लिए यहाँसे बिदा हो गये।

परमात्मामें अटल विश्वास, धैर्य, सत्य, परोपकार, त्याग, कृतज्ञता, उदार, सन्तोष, विनय, वैराग्य, भक्ति और नाम प्रेम आदि आपके जीवनमें खास गुण थे!

—

जब कभी ॐ ध्वनिका कीर्तन होता है तो वे समाधिस्थसे हो जाते हैं। वैसे भी पंचधुनि तथा जल साधना करते समय चित्तको एकाग्र करके मन्त्रोंका जप करते रहे हैं।

छठवीं भक्ति की तो बाबाजी मानों सजीव मूर्ति ही हैं। छः शास्त्रों तथा दस उपनिषदोंमें अगाध प्रेम रखते हुए शास्त्र विहित सत्कर्मोंमें निरन्तर रत रहना ही बाबाजीके जीवन का परम प्रयोजन है।

सातवीं भक्ति का लक्षण है समस्त सृष्टिका प्रभुमय प्रतीत होना। रामायणमें ही एक स्थानपर कहा गया है कि—

"उमाजे रामचरनरत, बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत, केहि सनकरहिं विरोध॥

सन्तोंको परमेश्वरका स्वरूप तो बाबाजी बचपनसे ही मानने लगे थे और अब भी उनके साथ अत्यन्त आदरपूर्ण व्यवहार किया करते हैं। इसके अतिरिक्त केवल मनुष्योंसे ही नहीं बल्कि प्राणी मात्रसे उन्हें प्रेम है।

सियाराम मय सब जग जानी,
करौं प्रणाम जोरि युग पाणी।

यही बाबाजीका भाव रहता है। राग द्वेष से परे रहकर आप सबको समान दृष्टिसे देखते हैं; सारा संसार ईश्वरमय प्रतीत होता है। ऐसी स्थिति प्राप्त हो जानेपर।

आठवीं भक्ति के यथा लाभ संतोष तथा दूसरोंके दोषोंको न देखनेके लक्षण अपने आप दृष्टिगोचर होने लगते हैं। महर्षि पतञ्जलि ने अपने योगसूत्रमें भी कहा है कि—

"शौच संतोष तपः स्वाध्यायेश्वर,
प्राणिधानानि नियमाः॥ (२-३२)

अन्तर्बाह्य पवित्र, तपस्वी, स्वाध्यायरत एवं ईश्वर चिन्तनमें ही लीन बाबाजी हर स्थितिसे संतुष्ट रहते है। बाबाजी दूसरेके गुणोंकी इज्जत करते हैं दोषोंको ढूँढ़ते-फिरने वाली छिद्रान्वेषण दृष्टि उनके पास है ही नहीं।

नवीं भक्ति का लक्षण है निष्कपट भाव से सबसे व्यवहार करना तथा ईश्वरके ऊपर पूर्ण भरोसा रखते हुए हर्ष शोकसे दूर रहना। बाबाजी के व्यक्तित्वमें इन गुणोंका समावेश भी पर्याप्त मात्रामें पाया जाता है। निष्कपट भावसे सबके साथ व्यवहार करनेके कारण ही तो छोटे बड़े सबको ऐसा लगता है कि बाबाजी अपने ही हैं। ईश्वरपर तो उनको इतना भरोसा है कि जब कभी बीमार पड़ते हैं तब भी यही कहते हैं कि प्रभुकी इच्छासे जो कुछ हो रहा है मेरे कल्याण के लिए ही है। काया-वाचा मनसा अपने आप को ॐ ब्रह्मके हाथोंमें समर्पित कर दिया है। भगवान्‌ने भी गीतामें स्पष्ट कह दिया है—

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं,
प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥ (गी० १८.६२)

जिसका हृदय दया से, वाणी, सत्य से भूषित है और शरीर सदा दूसरों के हित में लगा रहता है उसे कलियुग के कोई कष्ट नहीं व्यापते।

सद्गुरु बाबा शारदाराम

श्री सरदार जी० एस० 'माही' अहमदाबाद

⊙

मुसीबत मुशकिलें और गम, सभी जब घेर लेते हैं।
(तो) अपने साक सम्बन्धी भी सब, मुँह फेर लेते हैं॥
पिता और माता कहते हैं, नहीं अपना दुलारा है।
गुरु "माही" के कहते हैं यह अपना भगत प्यारा है॥

कोई कहे ब्रह्मा, कोई कहे राम।
कोई कहे शिवजी, कोई घनशाम॥
तू ही विष्णु, तेरे सब नाम।
सत् गुरु बाबा शारदाराम॥

कोई फूलों की माला ला तुझे पहना रहा है।
कोई कलियों के गजरे तेरी खातिर ला रहा है॥
कोई फूलों की पत्तियाँ शीश पर बरसा रहा है।
कोई चरनों पे रखकर शीश सदके जा रहा है॥
और कह रहा है!

कोई कहे ब्रह्मा............

ले प्रसाद तेरे चरण छू जो लौटते हैं।
खुश हो आज अपने मन में सब यह सोचते हैं॥
मुबारिक अपने वखतों को सभी यह दे रहे हैं।
बाबा नाम तेरा धन्य कह कर ले रहे हैं॥
और कह रहे हैं!

कोई कहे ब्रह्मा............

जरा देखो कतारें बाँध कर जो आ रहे हैं।
खुशी चमके है चेहरों पे, तो दिल मुसका रहे हैं॥
भेंटा हाथ में लेकर झुकाये शीस आते हैं।
मुरादें लेने आते हैं मुरादें ले के जाते हैं॥
और कह रहे हैं!

कोई कहे ब्रह्मा............

ॐ जय गुरु शारदाराम

संग्रहकर्ता—हरेन्द्रपाल सिंह

ॐ जय गुरु शारदाराम,
प्रभु पूरण हो सुख धाम ।।
मन का पंछी व्याकुल होकर, दूर दूर उड़ जाये ।।
आखों से असुँअन की धारा, पीये प्यास न जाये ।
भींगी आखों से अम्बर को झाँके लेकर नाम,
ॐ जय गुरु शारदाराम ।
तीरथ-बरत किये, कर थाका, रोक मिली ना मन की ।
गंगा, जमुना में भी तैरा, आग बुझी ना तन की ।।
तेरे दरशन से अब हो गई, दूर यह गम की शाम,
ॐ जय गुरु शारदाराम ।
जन्म जन्म के बिछुड़े को, जब मिल गये चरण यहाँ ।
तूही बता दे सतगुरु मेरे, जाऊँ अब मैं कहाँ ।।
तेरी सूरत में देखा है, "माही" ने घनश्याम,
ॐ जय गुरु शारदाराम ।

कहैं कबीर सुनो भाई साधो.......

संग्रहकर्ता—मन्नूलाल चित्रकार

धोबिया जल बिच मरत पियासा ।
जल में ठाढ़ पियै नहीं मूरख अच्छा जल है खासा ।।
अपने घर कै काम न जाने, करै धोबयिन की आसा ।।
छिन में धोबिया रोवे धोवे, छिन में होत उदासा ।।
आपै बाँधे करम की रस्सी, आपै गर कै फाँसा ।।
सच्चा साबुन लै नहीं मूरख, है सन्तन के पासा ।।
दाग पुराना छूटत नाहीं, धोवत बरहो मासा ।।
एक रात को रोरी लगावे, थोड़ी पिये भरिमासा ।।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, आछत जल मरत पियासा ।।

शारदाराम जयन्ती समारोह

श्रीतीर्थ रामटेकड़ी पूनामें महोत्सव

प्रतिवर्षकी भाँति श्रीतीर्थ रामटेकड़ी पूना में सेवक मण्डलकी ओरसे श्रीमान् सर्वोपमा योग्य महन्त श्री उत्तमदासजी महाराज माँझन दरबार खार बम्बईकी अध्यक्षतामें सद्गुरु बाबा शारदारामजी महाराजका ७३वाँ जन्मोत्सव समारोह विशाल भण्डारेके साथ सानन्द सम्पन्न हुआ। इस वर्ष अन्य वर्षोंकी अपेक्षा अधिक भीड़ थी। लगभग दो हजार व्यक्तियोंने भण्डारेमें भोजन किया। मंगल ध्वनिके साथ प्रातः ६-४३ पर कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। हवन और अभिषेक होनेके बाद श्रीतीर्थ रामटेकड़ी उदासीनगढ़की परिक्रमा सजे हुए रथ एवं बाजे गाजेके साथ शुरू हुई बालक, वृद्ध, नर-नारी सभी उत्साहमें कीर्तन करते हुए चल रहे थे। तत् पश्चात् एक बजे ईशस्तवन और हरिभजनके साथ महाराज जीका आरती पूजन प्रारम्भ हुआ। २ बजेसे ४॥ बजे तक भण्डारा चलता रहा।

सायंकाल पाँच बजे विशाल सत्संग भवनके बीच श्री महन्त उत्तमदासजीकी अध्यक्षतामें सभा प्रारम्भ हुई। ईशस्तवन एवं सभापतिके आसन ग्रहण करनेके बाद एक घंटा कवि-सम्मेलनका कार्य क्रम चलता रहा। सेवकोंने महाराजजीके जीवन सम्बन्धी कवितायें पढ़ीं। जिनमें गुरुचरन सिंह "माही" के गीत और हजारी लाल सलुजेकी कवितायें अधिक पसन्दकी गईं। श्री गो[illegible] राव जानाके प्रस्तावित्र भाषणके बाद "परमा[illegible] सन्देश" के प्रधान सम्पादक आचार्य भद्र वैद्यका भाषण हुआ। इसके बाद बाबा शा[illegible] रामजी महाराज रचित मुक्ति सोपान नामक ग्रन्थका उद्घाटन माननीय अध्यक्ष महोद[illegible] कर कमलों द्वारा सुसम्पन्न हुआ।

अपने अध्यक्षीय भाषणमें श्री म[illegible] उत्तमदासजीने मुक्ति सोपानकी भूरि-[illegible] प्रशंसा की। दुःख निवृत्तिके लिए साध[illegible] और असाधारण पुरश्चरणकी व्या[illegible] करते हुए आपने कहा—आज सभी [illegible] अष्टग्रह योगके भावी कष्ट और विनाश[illegible] विज्ञानसे भयभीत हैं। भयसे व्याकुल निःस[illegible] मनुष्यके लिये यह मुक्ति सोपान एक प्रका[illegible] दवा है और सत्संग नाम, जप ये पथ्य (परे[illegible] हैं। जो भी नियम परहेजसे रहकर सन्तके [illegible] से निकली हुई इस दवाका सेवन करेगा वह [illegible] मुक्त हो ग्रहकोपसे सुरक्षित रहेगा। भक्तोंके [illegible] निवारणके लिये ही भगवान सन्तवेषमें अवत[illegible] होते हैं। सन्त अपने भक्तको दुःखी नहीं [illegible] सकते, वे उसके कल्याणके लिये सदा अमृतव[illegible] की वर्षा किया करते हैं। मनुष्यको जप, स्तु[illegible] कीर्तन, भजन द्वारा उस अमृतवाणीका ला[illegible] उठाना चाहिए।

अध्यक्षीय भाषणके बाद सद्गुरु बाबाजी का रसपूर्ण एवं ज्ञानगर्भित प्रवचन हुआ। महाराजजीने अवतार और सन्तोंकी शक्तिका विवेचन करते हुए कहा—"पृथ्वीका बोझ कम करनेके लिये जब भगवान अवतार लेते हैं तब उनके पास २ शक्ति रहती है। विभूति और बारूद। सन्तोंके पास केवल एक शक्ति विभूति रहती है।" बाबाजी ने राम, कृष्ण, बुद्ध, शंकराचार्य आदि अवतारी महात्माओंका उदाहरण देकर विस्तारसे समझाया कि किस प्रकार इन लोगोंने बारूद और विभूतिका उपयोग कर लोक कल्याण किया। महाराजजीने आगे कहा—'सम्पूर्ण संसार ब्रह्ममय है। जीव ब्रह्म एक ही है। हम दो नहीं हैं। दूषित मनोवृत्ति निन्दनीय कर्म और वासनाका त्यागकर नामके प्रभावसे हम सभी ब्रह्मरूप हो सकते हैं। ब्रह्म सबमें है पर दिखलाई इस लिये नहीं पड़ता कि मन साफ नहीं है। जैसे सोना जमीनमें गड़ा रहा। ऊपर मैल चढ़ जानेसे काला हो गया है। देखनेमें सोना नहीं मालूम पड़ता है। पर उसका मैल, आवरण साफ कर देनेपर सोना प्रतीत हो जायगा। सन्त लोग विभूति-शक्तिसे असज्जनको भी सज्जन बना देते हैं। जैसे नारदने वाल्मीकिको नामके प्रभावसे डाकूसे महात्मा बना दिया।

गुरुनानक देव कहते है—"साध चोर दोनों ब्रह्म ज्ञानी।" दोनोंमें फरक केवल इतना ही है कि एकका मल साफ हो गया है, जो अज्ञानका आवरण था वह हट गया है और दूसरे पर मल चढ़ा हुआ है। सूर्यका प्रकाश सब पर पड़ता है पर उसका प्रतिबिम्ब सब जगह नहीं दिखलाई पड़ता। साफ पानी और दर्पणमें तो दिखलाई पड़ता है लेकिन गन्दा जल और हिलते जलमें नहीं दीखता। इसी प्रकार मलयुक्त और चंचल मनमें भी ब्रह्मका बोध नहीं होता है।

"ब्रह्म सर्व ठाईं ठसला" ब्रह्म सब जगह भरा है। वह सत्-चित् आनन्द रूप है। पर आनन्द क्यों नहीं मिलता? सो मनके कारण नहीं मिलता। जिसका मन जितना शुद्ध होगा वह उतना ही आनन्द प्राप्त करेगा।

महाराजजीने अन्तःकरणकी शुद्धि पर बल देते हुए विवेक वैराग्य षट सम्पत्ति तथा यम-नियमको अन्तःकरणकी शुद्धिका साधन बतलाया। सन्तोंके संगको भी मल विक्षेपका साधन बतलाते हुये आपने कहा कि सन्त लोग धोबीके समान हैं। सुनार, बढ़ई और कुम्हारके समान हैं। धोबी कपड़ेकी मैल साफ करते हैं और सन्त लोग मनको मैल साफ करते हैं। जिस प्रकार सुनार, बढ़ई, कुम्हार आदि अपने इच्छानुकूल सोना लकड़ी मिट्टीसे जेवर, यन्त्र, पात्र बना लेते हैं वैसे ही सन्त लोग मनुष्यको इच्छानुसार ज्ञानी, महात्मा बना देते हैं। सन्तोंका संग और उनकी वाणी हर प्रकारसे कल्याण ही करेगी।

१॥ घण्टे तक महाराजजीका प्रभावशाली प्रवचन होता रहा। अन्तमें सेवक मण्डलके अध्यक्ष श्री अजित मेहताने सबका हार्दिक आभार प्रदर्शन और धन्यवाद देते हुये सभाका विसर्जन किया।

शारदा प्रतिष्ठान वाराणसीमें

श्री सद्गुरु बाबा शारदाराम जयन्ती समारोह !

पूर्व सूचनानुसार दिनांक १८–११–६१को प्रबोधिनी एकादशीके प्रातःकाल ६ बजे सद्गुरु बाबा शारदारामजी उदासीन महाराजका जयन्ती महोत्सव बड़ी धूमधामसे स्थानीय शारदा प्रतिष्ठान सी० के० १५।५१ सुड़िया बुलानालामें मनाया गया। सभापतिका आसन विद्या वयोवृद्ध श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्री वेदान्तीजीने ग्रहण किया।

सर्वप्रथम विधिवत् पूजन तथा हवनोपरान्त नगर-नारद श्री सूर्यबलीसिंह द्वारा ॐ ध्वनिपूर्वक हरिकीर्तन हुआ। तत्पश्चात् 'मुनिकुल अध्यात्म विद्यालय' के प्रधानाचार्य (श्री सरयूप्रसाद शास्त्री 'द्विजेन्द्र' गार्ग्यमुनि) ने स्वागतभाषण पूर्वक सभापति महोदयको माल्यप्रदान किया।

सर्व श्री बालचन्द भगतके प्रारम्भिक भाषणके बाद सभापति श्रीवेदान्तीजीका आध्यात्मिक सत्संग या संतमहिमा परं ज्ञानवर्द्धक एवं प्रभावशाली प्रवचन हुआ।

परम सत्संगी त्यागनिष्ठ वेदान्तीजीने अपने प्रवचनमें कहा—"मोक्षका द्वार मनुष्य है और सत्संग, शम, शान्ति तथा सन्तोष उसके साधन हैं। इन्हीं चारोंको द्वारपाल भी कहते हैं। जैसे किसी विशाल भवनमें बिना द्वारके प्रवेश नहीं होता और यदि वहाँ द्वारपाल हो तब तो अवश्य ही प्रवेश पाना कठिन है, वैसे ही यहाँ मोक्षसदनमें प्रविष्ट होनेके लिए इन चारों द्वारपालोंको अपने अनुकूल करना आवश्यक हो जाता है। इसीलिए पहले इन द्वारपालोंका परिचय प्राप्त करना होगा। देखिये, सर्वप्रथम मनुष्यको सत्संग या सन्त-संग करके तत्वज्ञान उपार्जन करना चाहिए। तत्वज्ञान द्वारा इन्द्रियोंको अपने आधीन करनेका नाम 'शम' है। यह दूसरा द्वारपाल हुआ। पुनः शम द्वारा ही शान्ति मिलती है, यह तीसरा द्वारपाल है। शान्ति प्राप्त करनेपर ही जीवको सन्तोष मिलता है और सन्तोष आ जाने पर फिर क्या कहना! इसे ही चौथा द्वारपाल कहा गया है। इस प्रकार चारो द्वारपालोंको आध्यात्मिक भावसे समझ लेनेपर स्वयं 'बोध' हो जाता है। इससे यह स्वतः सिद्ध हो गया कि 'सन्त' ही प्रधान कारण हैं।

आगे चलकर वेदान्तीजीने बड़े ही सुन्दर एवं सुबोध ढंगसे 'सन्त' का निरूपण करते हुए कहा—'सन्त' आनन्द-कन्द बादल हैं, जो संसार रूपी आकाशमें सर्वत्र विद्यमान रहते हैं और विद्युत् रूप प्रकाश यत्र-तत्र दिया करते हैं। साथ ही भक्त रूपी किसानोंके हृदय क्षेत्रमें सलिल-सुधा वर्षाकर आनन्दित किया करते हैं।

इसी प्रकार 'सन्त' वायु हैं। वायु ही सर्वत्र गन्धकी भाँति ब्रह्मकी सत्ताको अनुभव कराता है। जैसे मछलीको जलसे शान्ति मिलती है, बालु या मृत्तिकासे नहीं। वैसे ही जीवको ब्रह्मसे शान्ति मिलेगी, मायासे नहीं। जीवको 'ब्रह्म' बनानेकी शक्ति 'सन्त' में हैं; क्योंकि सन्त परमात्माका ज्ञान कराकर, परमानन्द दिलाते हैं। परमानन्दको प्राप्त करना ही ब्रह्मज्ञान कहलाता है। जैसे सूर्यसे अन्धकारका नाश होता है वैसे ही सन्तसे दुःखका नाश होता है। सन्त-सूर्य भक्ति-रूपी किरणोंसे अज्ञानान्धकारको दूर करते हैं।

वेद शास्त्र एवं पुराण आदि पर्वत हैं, भक्ति खानि है। सन्त महात्मा उसके पथ प्रदर्शक है अर्थात् पहाड़ोंमें छिपी हुई खानको बतानेवाले संत ही हैं। अतः सुमति रूपी कुदारीसे खनिये, कहाँ कैसे खोदा जाय, यह सूक्ष्म बुद्धि भी सन्त ही दे सकता है। तब ज्ञान-विराग द्वारा उसे खोदिए। बीच-बीचमें उत्साह एवं सुरुचि सन्त देता है। भगवत् कृपासे यह दुर्लभ तन मिला है, जो देव दुर्लभ है। हरि-भक्तिसे ब्रह्मसाक्षात् होता है, उसीसे अन्ततोगत्वा तृप्ति होती है। तृप्तिका ही अपर नाम है—'मुक्ति'। यदि यह शरीर पुष्प है, तो गंध है 'परमात्मा'।

यदि देह वस्त्र है तो परमात्मा 'सूत्र' है। इसी प्रकार जीव अंश है तो पूर्ण है परमात्मा ब्रह्म-स्वरूप। अपूर्णका पूर्णमें मिलना ही 'मुक्त' होना है। जैसे विद्युत् सूत्रमें अनेक बल्बके संलग्न होनेसे पृथक् २ प्रकाश दीख पड़ता है और उनके आकार-प्रकार एवं रूप-रंगमें भेद होनेसे बिजुलीकी रूप-रेखा वैसी ही दिखाई पड़ती है। वैसे ही ब्रह्म एक है, सूत्रवत है और जीव वस्त्र या मनियाकी भाँति उसीमें पिरोया हुआ एक दूसरेसे पृथक् प्रतीत होता है।

परमात्मा मेरा है, मैं परमात्माका हूं। चन्दनको विष्ठामें रखनेसे बाहरी दुर्गन्धि होती है—पर पहलेसे वह सुगन्धित है ही। बिना गुरुके सद्ज्ञान नहीं होता और सद्ज्ञान बिना विराग भी नहीं होता। फिर विराग बिना मोक्ष भी नहीं होता। इसलिए यह स्वयंसिद्ध हो गया कि सद्गुरु सन्तका संग करनेसे ही मनुष्य मोक्षाधिकारी होगा, यह निर्विवाद सिद्ध हुआ।

इस प्रकार वेदान्तीजीके प्रवचनके बाद निर्गुण रामायणका पाठ तीन घंटे तक चलता रहा। और बाबा शारदाराम उदासीन महाराजकी अपूर्व सुन्दर झाँकी चौबीस घंटेतक खुली रही। अन्तमें प्रसाद वितरण पूर्वक सधन्यवाद सभा विसर्जित हुई।

उदासीनपुरी आजमगढ़में जयन्ती समारोह

पंच मन्दिर उदासीनपुरी कप्तानगंज आजमगढ़में धूमधामसे जयन्ती समारोह मनाया गया। हवन-पूजन कीर्तन-भजनके साथ इस अवसर पर एक भण्डारेका आयोजन किया गया था। ब्राह्मण साधु, तथा क्षेत्रीय-व्यक्तियोंने भण्डारेमें भोजन किया। पंच-मन्दिरके व्यवस्थापक श्री ज्योतिरामजीने लगन और परिश्रमके साथ बड़ी सुन्दर व्यवस्था की थी।

—:o:—

३ से ५ फरवरी ६२ तक होने वाले

अष्ट ग्रहयोगसे भयभीत जनताको

अभय करने वाली सन्तवाणी

मुक्ति सोपान

सज्जनों ! आज सम्पूर्ण विश्वमें ३ से ५ फरवरी १९६२ तक मकर राशिपर होने वाले अष्ट ग्रह योगकी चर्चा चल रही है। भारतीय ज्योतिषियोंका कहना है कि यह अष्ट ग्रह योग विश्वके कुछ भागके लिए अत्यधिक कष्टप्रद सिद्ध होगा। कुछ ज्योतिर्विद इसके विपक्षमें भी हैं। सत्य जो भी हो वर्तमान समयमें हो रहे ऋतुविपर्यय और प्राकृतिक दुर्घटनाओंको देखकर मोह, भोगमें लिप्त मानवका भयभीत होना स्वाभाविक ही है। यह ध्रुव सत्य है कि धर्मक्षय होनेपर कर्मक्षय होता है और कर्मके क्षय होनेपर ऋतुविपर्यय और ग्रह-कष्ट विशेष की समुपस्थिति होती है। ऐसे दुर्दिन-दुष्कालपर मनुष्यका कोई बस नहीं चलता, विज्ञानके सम्पूर्ण साधन धरे रह जाते हैं। चिल्लाकर असक्त पशुओंकी भाँति मरनेके अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं दीखता। सर्वत्र मौतका सन्नाटा और अज्ञानका अन्धकार रहता है।

ऐसे ही विकट समयमें भगवान् सन्तोंके रूपमें अवतरित होकर निरीह प्रजाको दुःखसे मुक्तिका सच्चा मार्ग दिखलाते हैं। भगवत् शरण, आत्मसमर्पण, जप-कीर्तन, भजन और ध्यान पूजा, प्रार्थना ही एक मात्र साधन है। शोकातुर अर्जुनके समक्ष स्वयं भगवान् कहते है—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच॥

सब धर्म त्यागकर भगवत् शरण ले तथा शोक, सन्ताप, चिन्ता, भय, दुर्बल बुद्धि त्याग कर मुझ सर्व शक्तिमानका आसरा भरोसा रख मैं तुझे सब दुःखोंसे मुक्त करूँगा।

इसी महावाक्यके अनुसार सन्त शिरोमणि करुणामूर्ति सद्गुरु बाबा शारदाराम मुनि महाराजने जीव मात्रके सुख शान्तिके निमित्त अहेतुकी कृपाकर जप, पाठ और पूजनके लिए यह "सर्व ग्रह शान्ति मुक्ति-सोपान" ग्रन्थ प्रसाद स्वरूप प्रदान किया है। "मुक्ति सोपान" महाराजजीके मुखारविन्दसे निकली हुई मन्त्रतुल्य अमृत वाणियोंका संग्रह है। कतिपय वाणियाँ महाराजजीकृत निर्गुण महारामायण तथा भागवत किरणसे संग्रहितकी गई हैं।

सिद्ध सन्तके मुखके निकली हुई वाणी कभी निष्फल नहीं होती। श्रद्धालु जनताके

इसका नित्य जप-पाठ करके आत्मबलका संग्रह करना चाहिये। और साथ ही अपने इष्ट, मित्र, सगे-सम्बन्धियोंको भी प्रेरणा देनी चाहिये। 'खुद तरे कुल परिवारको तारे'' यही पुण्यात्माओंका कर्तव्य है।

ज्योतिषियोंकी उक्तिके अनुसार इन अष्टग्रहयोगका प्रभाव दिसम्बर १९६२ तक रहेगा। अतः इस बीच परमात्माके नाम जपका सम्बल कभी भी नहीं छोड़ना चाहिए। भगवान श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्

जो अनन्य भावसे मेरेमें स्थित हुए भक्त जन मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए, निष्काम भावसे भजते हैं, उन नित्य एकी भावसे मेरेमें स्थिति वाले मनुष्योंका योग क्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ। परमात्मा माताके समान अपने आश्रितोंकी रक्षा करते हैं।

अतः भय और विनाशसे बचनेके लिए सभीको मुक्ति सोपानका जप, पाठ, मनन, ध्यान करते हुए सर्वशक्तिमान परमात्माकी शरण जाना चाहिये। जपकी महत्ता बतलाते हुए भगवान कृष्ण स्वयं कहते हैं—

''यज्ञानां जप यज्ञोस्मि''

प्रत्यक्ष है आज देशमें अष्ट ग्रह शान्तिके लिये सर्वत्र यज्ञोंके आयोजन हो रहे हैं। सामान्यतया भी लोग दुष्ट ग्रहकी शान्तिके लिये यज्ञ-अनुष्ठान आदि कराते हैं। ऐसी स्थितिमें सर्व यज्ञोंमें श्रेष्ठ जप-यज्ञका विधान आशु फलदायी सिद्ध होगा इसमें सन्देह नहीं।

—:o:—

अष्टग्रहयोग, प्रलय या सत्ययुग

[पृष्ठ ५६ कालम २ से आगे]

जिद्दी बालक है। पिता अपने बालकको ज्ञान तो सिखाना चाहता है लेकिन जानसे मारना कभी नहीं चाहता, सीधे नहीं मानेगा तो थप्पड़ लगायेगा, सजा देगा, उसे सद्मार्गपर लायेगा।

आज मानवजाति वहाँपर है जहाँ पंचतत्व और मन, बुद्धि, अहंकारका विकास पूर्ण हो चुका है। नये धर्म चक्रका निर्माण सन्त लोग कर रहे हैं। धर्म चक्रका संचालन अभी प्रभुने नहीं किया है। विकास रुकने वाला नहीं, सभी विकासके लिए सतत प्रयत्नशील है। अब भगवानको यह ज्ञात हो गया है कि उनका अज्ञानी बालक मानव विज्ञान रूपी खिलौनेको छोड़कर ज्ञान, वैराग्य और धर्मको नहीं धारण करेगा। इसलिए अब समय वह आ गया है कि भगवान थप्पड़ लगाकर, कान उमेठकर, यदि इसपर भी न माने तो ठण्डेसे पीटकर अहंकारका नाशकर ब्रह्मज्ञानी बनने वाले आत्म तत्वको विकसित करेंगे। जिस क्षणसे नव तत्वोंके मंत्रीमण्डलका राजा आत्मतत्व होगा उसी क्षणसे सत्ययुगका प्रारम्भ है। अब वह समय अधिक दूर नहीं आज हम कलि और सत्ययुगके सन्धिकालमें है। अष्टग्रहयोग जन्य कष्ट, भय, आतंक आदि दण्डोंके द्वारा भगवान मानवके अहंकारका नाश करेंगे। अहंकारका नाश होते ही बुद्धिका विकास और तद्जन्य विज्ञानका भक्तिज्ञान वैराग्य धर्म इन चारके द्वारा संचालन तथा धर्म चक्रका परावर्तन होगा और आत्मतत्वका विकास हमें सत्ययुगके द्वार तक ले जायेगा। अष्ट ग्रहयोगके बादसे ही हमें सत्ययुगके लिए तैयारी करनी है। कुम्भ स्नान करनेके बाद हमें अपने साधन में जुट जाना चाहिए। प्रलय और संहारके भयको मनसे निकाल दीजिए। यह समय आत्मतत्व पर पड़े हुए आवरणको हटानेका है। जो इस कार्यमें संलग्न होकर यम-नियम धर्मसे भगवानके शरणागत होकर आत्म संस्कार, अन्तःकरणकी शुद्धि करेगा वह अष्ट ग्रहकोपसे सुरक्षित होगा। सत्ययुगके लिए अनुपयोगी पापी नारकीय जीव सद्कर्म रूपी कपड़ेके अभावमें ठिठुरकर मर जायेंगे। अतः आत्मोन्नति और आत्म संशोधन ही इष्ट है। अष्ट ग्रहोंसे भयका कोई कारण नहीं।

—:o:—

मुक्ति सोपान का प्रचार-प्रसार

गुरु महाराज की इच्छा से सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय, मुक्ति सोपान का प्रचार-प्रसार सम्पूर्ण देश में

आठ महीनेके अन्दर हो जाना चाहिए

धनीमानी सेठ साहुकार धर्मात्मा लोगों को गरीब जनता के कल्याणार्थ छपवाकर निःशुल्क वितरित करवा देना चाहिए।

निम्नलिखित सज्जनों ने लोककल्याण के लिए मुक्ति सोपान छपवा कर धर्मार्थ बटवाया है।

१—श्री भगवानदास भानदासजी
किंग सर्किल, बम्बई—२००० प्रतियाँ

२—श्री अजित मेहता
अजित कन्सट्रक्शन को० पूना-४—१००० प्रतियाँ

३—श्री पी० के० गुप्ता प्रभाती
शारदाकन्सट्रक्शन पूना—१००० प्रतियाँ

४—सेठ फतहचन्द्रजी
अमृतलक्ष्मी स्टोर वाराणसी—१००० प्रतियाँ

५—श्री हजारीलाल ओ३म प्रकाश सलुजे
गुरुदेव रेस्टोरेन्ट पूना—१००० प्रतियाँ

और भी अनेक लोग छपवानेका उद्योग कर रहे हैं। आप भी यदि इस पुण्यकार्यमें भाग लेना चाहें तो छपवा कर अपने क्षेत्रमें निःशुल्क वितरित करवा देनेकी कृपा करें। यदि हो सके तो अपने शहरमें ही छपवा लेना चाहिए। असुविधा होने पर शारदा प्रतिष्ठान सी० के० १५।५१ सुड़िया वाराणसीसे पत्रव्यवहार करें। मुक्ति सोपान हम सस्ते दर पर छाप-कर आपकी सेवामें भेजने की व्यवस्था करेंगे। हमारे यहाँसे एक हजार प्रति छपवाने पर १२५) के लगभग खर्चा पड़ता है। पुस्तककी पीठ पर छपवाने वालेका नाम पता छपा रहता है।

अनोखा सन्त

महात्मागांधी

मोहनचन्द्र करमचन्द्र गाँधी, भारतीय जनताके हृदयमें बसने वाले "बापूजी"के जीवनसे प्रायः देशका बच्चा बच्चा परिचित है। "रघुपति राघव राजाराम, पतित पावन सीताराम" के शक्तिशाली मन्त्र तथा अहिंसक चरखा अस्त्र के द्वारा देशको दासतासे मुक्त कर "सत्य" भगवानकी पूजाका पाठ पढ़ानेवाला साबरमतीका सन्त विश्वमें अपना अनूठा स्थान रखता है। कुरुक्षेत्रके कृष्णकी भाँति राजनीतिमें हस्तक्षेप करते हुए भी ये अपनेको सदा एक धार्मिक व्यक्ति ही मानते रहे हैं। और धार्मिक दृष्टिकोणसे ही मानव जीवनके प्रत्येक अंशों पर विचार करते रहे। इन्होंने राजनीतिको धर्मसे पृथक कभी नहीं समझा। घोर भौतिकवादके युगमें भी आध्यात्मिक धारणाओंका महत्व प्रतिष्ठित करना चाहा और अपने चरित्रबल तथा एकान्त निष्ठाके सहारे सर्व साधारणका ध्यान एक बार फिर उन बातोंकी ओर आकृष्ट कर दिया जो वर्तमान समयके लिए सदा निरर्थक समझी जाती रहीं। इनकी आस्तिकता, विश्वकल्याणकी भावना, एकतामें पूर्ण विश्वास, विचार स्वातन्त्र्य वाह्य विडम्बनाओंसे असन्तोष, सार्वभौम विचार तथा स्वानुभूतिके प्रति आस्था आदि सभी गुण सन्तोंके समान ही थे।

महात्मागाँधी कहते थे—"मैंने सत्यको जिस रूपमें देखा है और जिस राहसे देखा है, उसे उसी राहसे बतानेकी कोशिश की है। मैं सत्यको ही परमेश्वर मानता हूँ।" बापूका तत्त्वज्ञान आध्यात्मिककी अपेक्षा नैतिक अधिक है। इनका कहना है कि, "बिना आत्मशुद्धि के प्राणिमात्रके साथ एकताका अनुभव नहीं किया जा सकता। अशुद्धात्मा परमात्माके दर्शन करनेमें असमर्थ रहता है, इसलिए जीवन पथके सारे क्षेत्रोंमें शुद्धिकी जरूरत है। शुद्धिका मतलब मनसे, वचनसे, कायासे निर्विकार होकर राग-द्वेषादिसे रहित होना है।

"मनुष्यका अन्तिम उद्देश्य परमात्माकी उपलब्धि है, जिसकी ओर ध्यान रखते हुए उसे अपनी प्रत्येक चेष्टाको चाहे वह सामाजिक हो, या राजनीतिक हो, अथवा धार्मिक हो, उन्मुख करना कर्तव्य हो जाता है। सारी मानवजातिकी सेवा उसके लिए इस कारण आवश्यक हो जाती है कि परमात्माको उसकी सृष्टिके अन्तर्गत ही पाना और उसके साथ एकताका अनुभव करना सम्भव है। जब मैं सम्पूर्णका एक अंग मात्र हूँ। तब उससे अलग रहकर मेरा परमात्माकी खोज करना हो नहीं सकता और इसी कारण सबकी सेवाका महत्व है।"

यंग इन्डिया पत्रमें ता० १२--५--२० पृष्ठ १०७० पर गाँधीजी धर्मके विषयमें अपना विचार लिखते हैं—"धर्म वही है जिसके द्वारा मनुष्यके ठेठ स्वभावमें परिवर्तन हो जाय, जो उसे सत्यके साथ सदाके लिए जोड़ दे और जो उसे बराबर शुद्ध और पवित्र करता रहे। यह मानव स्वभावका एक स्थायी अङ्ग है जो अपने को पूर्णतः व्यक्त करनेके लिए कुछ भी उठा नहीं रखता और जो आत्माको परमात्माके साथ मिल जाने व उसके साथ सच्चे सम्बन्धका अनुभव करनेके लिए आतुर व बेचैन कर देता है।"

ईश्वरके नामके विषयमें अपना विचार महात्मा गांधी हरिजन पत्रमें लिखते हैं—"ईश्वरके लिए भिन्न-भिन्न धर्मों व सम्प्रदायोंने भिन्न-भिन्न नाम दिए हैं किन्तु ऐसे नाम उसके व्यक्तित्वके बोधक नहीं, उसके गुणोंके परिचायक मात्र हैं, जिन्हें अपने अनुभवके अनुसार निर्धारित कर मनुष्यने दे रखा हैं। वह स्वयं सारे गुणोंसे परे है, वह अनिर्वनीय है और उसे हम अपनी किसी तौलकी सीमामें नहीं ला सकते। मेरे राम जो हमारी प्रार्थनाके समय स्मरण किये जाते हैं, वह ऐतिहासिक राम; जो अयोध्यानरेश दशरथके पुत्र थे। मेरे तो नित्य अजन्मा और अद्वितीय हैं औ उन्हींकी उपासना करता हूँ। मैं उसीका अ लम्ब चाहता हूँ और आपलोगोंको भी उसी आश्रय ग्रहण करना चाहिए। वह काला निराकार निष्कलंक और वही राम मेरा प्रभु शासन कर्ता है। मैं पहले सीताके पति राम उपासना करता था, किन्तु जैसे जैसे मेरा भव बढ़ता गया मेरे राम अमर और सर्वव्य होते गये। इसका अर्थ यह नहीं कि राम सीत पति नहीं रह गये, किन्तु सीता पति राम अभिप्राय क्रमशः अधिकसे अधिक व्या होता गया और तदनुसार उनका स्वरूप मेरी दृष्टिमें अधिकसे अधिक व्यापक हो गया। जगत्का विकास इसी प्रकार होता। अतः सत्य ही वास्तवमें राम, नारायण, ईश् खुदा, अल्लाह व गाड है और उसके सिवाय अ कुछ भी नहीं। ईश्वर कोई व्यक्ति नहीं, सर्वत्र व्याप्त है, सर्व शक्तिमान है। जो उसे अपने भीतर अनुभव करता है, वह विचित्र शक्ति द्वारा अनुप्राणित हो जाता है जो विद्युत और परमाणु शक्तिसे भी अधिक शक्तिसम्पन्न और सूक्ष्मातिसूक्ष्म है राम-नामका स्मरण अपने भीतर उस शक्तिका अस्तित्व जमाये रखनेका आवश्य साधन है, जिसका अभ्यास यथा सम्भव निरन्तर होना चाहिये।

—:०:—

सम्पादकीय

अष्टग्रहयोग, प्रलय या सत्ययुग

संवत् २०१८ पौष शुक्ल १२ से माघ शुक्ल १ तक मकर राशिपर आसन्न ग्रह योगके विषयमें ज्योतिर्विदोंके अनेकमत हैं। हमारे विचार से जैसा भयंकर रूप देकर अन्धकारमय भविष्यकी कल्पनाकी जा रही है वह सम्भव नहीं प्रतीत होता। इतना अवश्य मान लेना चाहिये कि प्राणी मात्रको उनके धर्म-कर्मानुसार कुछ दैवी कष्ट अवश्य भोगने होंगे। जिस प्रकार ऋतुओंके सन्धि कालमें स्वास्थ्यके प्रति असावधान व्यक्ति रोगसे कष्ट पाता है, जिसे लोग मौसम बदलना अथवा मौसमी रंग कहते हैं, ऐसा ही कुछ प्रभाव-विशेष इस अष्ट ग्रह योगका भी पड़ना सम्भव है। यह अष्ट-ग्रह-योग युग सन्धिके प्रारम्भका परिचायक है। पौष शुक्ल १२ जनवरी १७, १९६२ को सूर्य, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि और केतु एक राशि पर एकत्र हो रहे हैं। २४ जनवरीको १ बजे रातमें मंगल भी आ जाता है और ३ फरवरीको सायंकाल २ बजकर ४४ मिनट पर चन्द्रमा भी इसी मकर राशिपर आ जाता है। इस प्रकार ५ फरवरी तक यह अष्ट-ग्रह-योग बना रहता है। गणनाके अनुसार इसका प्रभाव आठ मास बाद तक दृष्टिगोचर होता है।

कहा जाता है कि द्वापर और कलियुगके सन्धि कालमें सात ग्रह एक राशिपर एकत्रित हुए थे, जिनके फलस्वरूप महाभारतके महायुद्ध द्वारा महाविनाश समुपस्थित हुआ। सन् १८६१ तथा १९२१ में षट् ग्रहों का योग हुआ था जिसके फलस्वरूप अमेरिका इटलीका युद्ध और गांधीके असहयोग आन्दोलन रूपी स्वतन्त्रताके सूर्योदयका पूर्वाभास हुआ था। भिन्न-भिन्न भविष्य वाणियाँ सुनकर लोग भयातुर हो रहे हैं। पर निकट भविष्यमें होने वाले योगका फल कष्ट प्रद होते हुए भी शुभ है। जिस प्रकार फोड़ेका आपरेशन कष्ट प्रद होते हुए भी भविष्यके लिए सुख रूप है उसी प्रकार यह अष्ट ग्रह योग प्रकृति, जल, थल, आकाश, देश कालमें परिवर्तन एवं संशोधन करके भविष्यमें आने वाले सत्ययुगका मार्ग प्रशस्थ करेगा। निःसन्देह आने वाला समय कलियुग और सत्ययुगके सन्धिकालका प्रारम्भ है। इसे सत्ययुगका ब्राह्ममुहूर्त भी कहा जा सकता है। यथा सूर्योदय ६ बजे से होने वाला होता है तो भी साधक जन ३, ४ बजे ही उठकर नित्य कर्म जप ध्यान प्रारम्भ कर देते हैं। सम्पूर्ण दिन को सुख शान्तिमय बनानेका उद्योग ज्ञानी लोग सूर्योदयके पूर्व ब्राह्ममुहूर्तमें ही कर लेते हैं। पूर्ण सत्ययुगके सूर्योदयमें अभी सैकड़ों वर्षोंका विलम्ब सम्भव हो सकता है परन्तु यह निश्चय है कि आनेवाला निकटभविष्य सत्ययुगका ब्राम्हमुहूर्त है। इसीमें प्रकृति और मनुष्य प्रभुकी शक्ति और इच्छासे अपनेको सत्ययुगके लिए उपयोगी बनाते हैं।

जो लोग ऐसा सोचते हैं कि सृष्टिका विनाश हो जायेगा, यह उनका भ्रम है। एक कल्प व्यतीत होनेपर ही महाप्रलय अर्थात् त्रिलोकीका नाश होता है। भूलोक, भुवःलोक (चन्द्रलोक) और स्वःलोक (सौर मण्डलके सम्मस्त ग्रहोंके साथ) त्रिलोकी नाथ (सूर्य भगवान्) तीन लोकके नाश होनेपर जो शेष बचता है उस शेष शय्यापर सोते हैं। यही ब्रम्हाकी रात्रि है। इसी भावकी कल्पना विष्णु भगवान्को शेष नागपर सोये हुए चित्रमें देखते हैं। एक कल्प तक सोनेके बाद पुनः ब्रम्हाकी इच्छासे त्रिगुणात्मक मायाका प्रपञ्च फैलता है। पुनः त्रिलोकी नाथ सूर्य प्रकट होते हैं और फिर उनसे क्रमशः ग्रह उपग्रह बनते जाते हैं। एक हजार चतुर्युगी (सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग) बीतने पर एक कल्प होता है। इस हिसाबसे लगभग २४० चतुर्युगी व्यतीत हो चुकी है अभी महाप्रलयमें अत्यधिक दिन शेष हैं। जिस प्रकार रात्रि के बाद दिन होना निश्चित है उसी प्रकार कलियुगके बाद सत्ययुगका होना ध्रुव है।

सृष्टिका सारा विधान ब्रम्हाकी इच्छा-शक्तिके आधीन नियमित चला करता है। इसमें मनुष्य रंच मात्र भी व्यतिक्रम नहीं कर सकता। भगवान् अपनी विभूति शक्तिसे जब जिस तत्वको विकसित करना चाहते है तब वही तत्व अपने गुणोंका विस्तार करता है। इसमें मनुष्यका कुछ भी बस नहीं चलता वह अज्ञानवश भगवान्के किये कामोंका स्वयं कर्ता बनकर दुःख-सुखका भोक्ता बन जाता है। यही अज्ञान जनित कर्म संस्कार और प्रारब्ध बनकर उसे अनेक योनियोंमें भटकाते हैं। विचारसे देखा जाय तो यह सारा नामरूप भेदात्मक जगत् केवल एक ही मूलतत्व ब्रह्मकी त्रिगुणात्मिका मायाका प्रपञ्च है। उस मूलतत्व-ब्रह्मके सिवा दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं। यह सारा जगत और जगतके सभी पदार्थ उस मूलतत्वके ही अंश होनेसे नाम, रूप और शरीर-भेद हमारे अज्ञान के ही परिणाम हैं। सृष्टिके तत्त्वों अथवा मनुष्यके अन्दर जो कुछ विकास होता है वह सब परमात्माकी इच्छा और आज्ञासे ही होता है। स्त्रियों, पुरुषों, ऋषियों, मुनियों, देवताओं और सिद्धों में यहाँ तक भौतिक तत्वादि शस्त्रास्त्रोंमें भी विभूति रूपसे जो कुछ विद्यमान है वह मूलतत्त्व ब्रह्म ही है।

यद्यद् विभूति मत् सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छत्वं मम तेजोंऽश सम्भवम्॥

इस संसारमें जो-जो पदार्थ विभूतियुक्त या ऐश्वर्ययुक्त हैं वे सब मेरी हो शक्तिके विकाससे उत्पन्न हुए हैं। उस ब्रह्म मायाके विकासकी कहानी भी बड़ी विचित्र और रहस्यमय है। आज मनुष्य बुद्धितत्वके विकाससे वैज्ञानिक सफलता प्राप्त कर रहा है। पर अज्ञानवश वह इसके रहस्यको नहीं समझता और कहता है कि यह समस्त वैज्ञानिक सुख-साधन और शक्ति मेरी अपनी उपज है। मेरे आगे अब कोई शक्ति नहीं है। और मायाके प्रभावसे अज्ञान जनित अहंकार विनाशका कारण बनता है। पर प्रसन्नताका विषय है कि अब सत्युग आने वाला है। दयालु परमात्माकी कृपा प्राप्त हो रही है, फलस्वरूप जहाँ अहंकारके कारण संसारका संहार होता आया है। वहाँ अब संसारका संहार न होकर अहंकारका संहार होगा और अहंकारके नाश होनेके बाद उस तत्वका विकास प्रारम्भ होगा, जिस तत्वका त्रेता, द्वापरमें क्रमशः ह्रास होता आया है। वह है "आत्म तत्व"।

यहाँ हम भौतिक प्रधान दृष्टिकोणसे चतुर्यु होनेवाले विकास और विनाश-क्रम पर दृष्टिपा लेना चाहते हैं। सर्वप्रथम ब्रम्हने अपनी मा विस्तार किया और ब्रह्माको सृष्टि रचनाका भार सौंप

प्रारम्भमें ब्रम्हाने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आ मन, बुद्धि, अहंकार और आत्मतत्वसे सृष्टि-रच कार्य प्रारम्भ किया। ब्रम्हा शब्दसे भड़कनेवाले बुद्धि वादी वैज्ञानिकगण ब्रम्हाको मिश्रित तत्वोंसे युक्त प्र मान सकते हैं। क्योंकि यहाँ हमें शब्दोंके जालमें फँसना है। जिस प्रकार नया काम प्रारम्भ करने व्यक्ति प्रारम्भमें अच्छासे अच्छा सामान लगाकर वस्तु निर्माण करता है वैसे ही सर्वप्रथम सतयुगमें युक्त ९ तत्वोंकी शक्तिको विकसित करके सृष्टि-र हुई। जिसमें आत्मतत्व जो सबमें श्रेष्ठ और स कारण है, उसका पूर्ण एवं शुद्ध विकास हु सत्युगके प्रारम्भकी कथा पुराणोंमें आई है कि ब्र सनत्कुमार आदि चार पुत्रोंको उत्पन्न किया और गृहस्थ धर्म पालन कर सृष्टि चलानेका आदेश दि इस पर सतोगुण प्रधान और आत्मतत्व विकसित ह कारण उनके चारों पुत्र जन्म-मरणके बन्धन संसारिक सुखोंमें न बँध वे अपनेको अजन्मा अवि समझ परमानन्दमें लीन सोहंकी स्थितिमें लगे। इनसे निराश होकर ब्रम्हाने आत्मतत अज्ञानका थोड़ा आवरण डालकर दस पुत्रोंको उ किया। उन्हें शादी करके संसार चलानेका आदेश दि इन्हीं दस पुत्रोने पिताकी आज्ञा मान संसारके सुख में लिप्त रहते हुए सृष्टिका विस्तार प्रारम्भ किया। सारी मनुष्य जाति इन्हीं दस ऋषियोंकी सन्तान धीरे-धीरे सत्ययुग बीतने लगा। इन्द्रिय सुख, सांसा सुख और जन्म-मरण के कारण सत्युगके ऋषियों आत्मतत्वपर अज्ञानका आवरण दिनपर दिन होने लगा। आत्मतत्वके ह्रासके साथ ही अहंकार त बढ़ने लगा। सत्युगके अन्तिम चरणमें आत्मतत्व अहंकारतत्वका युद्ध प्रारम्भ को गया और देखते देखते प्रारम्भिक ऋषियों द्वारा चलाये गये धर्मचक्र एक पाँव टूट गया। यही सत्ययुग और त्रेताका सन्धि

(प)ाल है। फल यह हुआ कि आत्मतत्व अहंकारसे (प)राजित हो गया। अथवा यों कहिये कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार और आत्मतत्व इन नौ तत्वोंके मन्त्रिमण्डलपर अहंकारका राज्याभिषेक हुआ।

उस समय भी विवेकी आत्मज्ञानयुक्त संसारसे निर्लिप्त (क्योंकि जो लोग सांसारिक मोहमें न पड़कर धर्मके सम्बलको पकड़े रहे उनके आत्म तत्व पर अज्ञान का आवरण न चढ़ सका) मनीषी ऋषि-मुनि आत्म तत्वके विकासके लिए सतत प्रयत्न करते रहे। पर बहुमत इनका कम था। अहंकारने अपनी चरम सीमा पर पहुँचकर रावण जैसे अभिमानीको जन्म दे दिया। धर्म चक्रका दूसरा पैर भी टूटने लगा। मनुष्य समाज अज्ञानवश स्वयं अर्जित किये हुए दुख-कष्टमें पड़कर कराह उठा। गेहूँ के साथ घुन भी पिसने लगा। ऋषि, मुनियोंका जीवन संकट ग्रस्त हो गया। त्रेताके अन्तिम चरणमें जनता त्राहिमां त्राहिमां कह आर्त नाद कर उठी। धर्मका दूसरा पैर भी टूट गया। अज्ञानका कुहरा और घना हो गया। धर्म रूपी चश्मासे कुछ दिखलाई भी पड़ता था पर दुर्भाग्य, विपत्ति कालमें ही चश्मा भी टूट गया। सद्मार्ग अहंकारी राक्षसोंके अत्याचारसे लुप्त होने लगा। तभी त्रेता और द्वापरके सन्धिकालमें इस बढ़ती हुई अशान्तिको दूर कर नई व्यवस्था, नया मार्ग-दर्शन के लिए—

"यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत"

के अनुसार भगवान रामका अवतार हुआ। अहंकारी रावणका विनाश हुआ। अब नौ मन्त्रिमण्डलमें गद्दी किसको दी जाय? धर्म चक्र भी केवल दो पैर वाला रह गया था। अहंकारके बाद बुद्धिको राजगद्दी दी गई। ९ तत्वोंमें अब आत्मतत्व पर घना आवरण चढ़ चुका था। साधारण जनके लिए वहाँ पहुँचना असम्भव हो रहा था। रामावतारके बाद अहंकारकी भी उग्रता घट चुकी थी। बुद्धिका धर्मके साथ गठबन्धन किया गया। द्वापरमें प्रभुकी इच्छासे बुद्धिका विकास उत्कर्ष पर था। शक्ति साधन और विज्ञान क्रमशः विकसित होता रहा। द्वापरके मध्य तक विकसित बुद्धिका संचालन धर्म द्वारा होता था। पर समय पाकर छठे नम्बरका मन तत्व भी विकसित होने लगा। मनके विकसित होते ही इच्छा और असन्तोष बढ़ने लगा। मन सम्पूर्ण व्यवस्थाको छिन्न-भिन्न कर स्वयं राजा बननेकी सोचने लगा। जिस क्रमसे ह्रास होता आ रहा था आत्म तत्वके अभावमें मनका विकसित होना आवश्यक था। पर मनने जड़ताके कारण अपने विकासके साथ ही अधर्मका विकास किया। अधर्मका ताण्डव नृत्य द्वापरके अन्तिम चरणमें प्रारम्भ हो गया। अधर्मसे धर्म पराजित हुआ। अधर्मके प्राकट्यके साथ ही बुद्धिके विकाससे प्राप्त भौतिक और वैज्ञानिक साधनोंका दुरुपयोग होने लगा। धर्मका तीसरा पैर भी टूट गया। धर्मकी भयंकर हानि हुई। अब एक पैरका धर्मचक्र संकटमें पड़ गया। कौरव और असुर म्लेच्छ राक्षस आदि अधार्मिक तत्वोंका बोलबाला हो गया। बुद्धिका विकास अपनी चरम सीमा पर था। तद्जन्य शक्तिके प्रभावसे मनमानी करनेवाले मनतत्व प्रधान कौरव किसी दूसरेका अस्तित्व ही नहीं मानते थे। द्वापर और कलियुगके सन्धिकालमें पुनः भगवान अपनी सोलह कलाओंसे युक्त श्री कृष्णावतारके रूपमें प्रकट हुए। श्रीकृष्णने मनतत्वके सहयोगी अधर्म, अत्याचार, स्वार्थपरता, दम्भ, हिंसा, काम, क्रोध आदि दुर्गुणोंको दबा कर बुद्धितत्वको धर्म द्वारा संचालित करनेकी अनेक चेष्टायें कीं। आत्मतत्व बिल्कुल घना आवरण युक्त था। धर्मके तीन पैर टूट चुके थे। एक पैरके धर्मका प्रभाव भी दिन पर दिन न्यून हो रहा था। बुद्धिके विकाससे आविष्कृत शस्त्रास्त्रोंके अहंकारमें कोई शान्ति, अहिंसा और सत्यकी बात नहीं सुनना चाहता था। आखिर क्या होता, चतुर्थयुग कलिके आगमनका यह प्रभाव था। बिना चक्रकी परिधिको पूरा किए आत्मतत्वकी प्राप्ति सम्भव नहीं थी। अतः निराश होकर भगवानने मुरली फेंककर हाथमें चक्र सुदर्शन धारण कर महाभारतकी घोषणाकी। उस समय सात ग्रह एक राशि पर एकत्रित होकर कलियुगके आनेका संकेत दे रहे थे। भगवानने बुद्धि विकासके फल स्वरूप प्राप्त तत्कालीन शस्त्रास्त्रोंके द्वारा भयंकर संहार कराया। अनेक प्राकृतिक कोप और परिवर्तन हुए।

गत तीन युगों से हो रहे दुःखान्त नाटक से विरत होकर भगवान ने पुनः सत्युग की स्थापना करनी चाही। पर यह बिना आमूल परिवर्तन, नवनिर्माण और नवविकास के सम्भव नहीं था। अतः प्रभु इच्छा से कलियुग का

चरण पड़ते ही एक पैरवाले धर्म का लोप हो गया। धर्मके लोप होते ही जड़ मूर्ख मन राजा बन बैठा। महाभारतके संहारमें बुद्धिविकास समाप्त हो गया। और सतयुग का नवनिर्माण करनेके लिये प्रभु ने भी नवों तत्वों के विकास को संकुचित कर लिया। कलियुग के राजा मन का घोर ताण्डव प्रारम्भ हुआ। अब क्या पूछना था – "अन्धेर नगरी चौपट राजा टकासेर भाजी टकासेर खाजा"। बुद्धिमान, विद्वान,ज्ञानी, महात्मा सब गुफाओं में जा बैठे। जड़ मन के राज्य में सभ्यता का पूर्णतया नाश होकर बर्बर असभ्यता जीवित थी। मनुष्य और पशुमें कोई अन्तर नहीं था। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश ये सब भी धर्म, गुण प्रभावसे रहित हो गये। इसी युगको हमारे इतिहासकार पाषाणयुगके नामसे पुकारते हैं। और अज्ञानवश कहा करते हैं कि हमारे पूर्वज जंगली और असभ्य थे। यह कलियुगका मध्य था।

आत्मतत्व, अहंकार, बुद्धि, हम, आकाश, वायु-अग्नि, जल, पृथ्वी, इन नव तत्वोंके विकासका अवरोह तो तीन युगोंमें होता है पर आरोह कलियुगके आधे भागमें ही हो जाता है।

कलियुगका मध्यान्ह जिसे मन पीछे पाषाण युग कह आये हैं, इसीके बाद मूलतत्व परब्रम्ह परमात्माकी इच्छासे पुनः विकास प्रारम्भ होता है। भगवानने जब जिस तत्वको विकसित होनेका आदेश दिया तब वह तत्व अन्यकी अपेक्षा विशिष्ट रूपसे विकसित हुआ। यह सम्पूर्ण कार्य भगवान मनुष्यको ही निमित्त मानकर करते हैं। पर इस भेदको न जाननेवाले हमारे इतिहासकार भगवानको कोई श्रेय न देकर प्रकृतिको देते हैं अथवा अपने आप होनेवाली क्रिया कहते हैं। जिसे सर्वमान्य नहीं कहा जा सकता। अब हम नये विकासकी कथापर प्रकाश डालते हैं। इस विकासमें हमारा इतिहासकारोंसे. मतभेद नहीं है।

कालचक्र कुछ ऐसा घूमा कि पाषाण युगके बाद भगवानने सत्ययुग स्थापनाके उद्देश्यसे क्रमशः विकास का आरोहण प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम प्रभुने पृथ्वीतत्व को शान्त, सुखकर, समृद्ध हो विकसित होनेका आदेश दिया। फलस्वरूप सृष्टिके अणु-अणुमें वर्तमान ९ तत्वों में पृथ्वी तत्व विकसित अर्थात् प्रधान हो गया। पृथ्वी अन्न, फल, फूल खनिज पदार्थोंसे परिपूर्ण हो गई। मनुष्य अधिक से अधिक भूमिपर अधिकार कर उ… अन्न आदि पैदा करने लगा। कृषि, पशुपालन आदि… विकास हुआ। इसके बाद प्रभु परमात्माने जलतत्व… विकसित किया। जलतत्वके विकसित होते… अनुकूल वर्षा, नदी, नहरों आदिके द्वारा प… सुख रूप हुई। इसी समय मनुष्य नाव… जहाजोंके द्वारा एक देशसे दूसरे देशको वि… करने लगा। यह जहाजी बेड़ेका युग था।… शक्तिके विकसित होनेके प्रभावसे ही अंग्रेजोंने अ… देशोंका समुद्र मार्गसे पता लगाया। समुद्रपर मनुष… शासन करनेकी शक्ति प्रभु इच्छासे ही प्राप्त हुई।… तत्वके बाद ब्रम्हाने अग्नितत्वको विकसित कि… अग्नि द्वारा वाष्पशक्तिके आविष्कारसे कति… जल, थल, यानोंका संचालन प्रारम्भ हु… इसके बाद वायुशक्तिका विकास हुआ वायुके तुरन्त… ही आकाशतत्व भी प्रभु प्रेरणासे विकसित हुआ।… प्रकार पंचतत्वके पूर्ण विकाससे एक आश्चर्यजनक वै… निक क्रान्ति हुई। पंचतत्वके विकाससे मनुष्य जल, थ… आकाशमें विचरनेके लिये उतावला हो उठा उस… कल्पनायें तीव्र हो उठीं। यही उसके मन त… का विकास था। असभ्य से सभ्य बनने पर… उन्नतिके मानेमें वह असन्तोषी रहा। भगवान्ने उ… बुद्धि तत्वका भी विकास कर दिया। बुद्धिका वि… होते ही मनुष्यने विज्ञान द्वारा अणुशक्तिके ऐसे चमत… दिखलाये कि आत्मतत्व प्रधान महात्माओंको भी गुफ… बाहर आना पड़ा। वे भगवान्की महती कृ… अपने अनुकूल वातावरण और आने वाले उज्ज… भविष्यको ज्ञान दृष्टिसे देखकर अत्यन्त हर्षित हुए।… वह सन्त युग है जब देशमें भक्ति ज्ञानकी लहर… चली। पर विज्ञानके उत्कर्ष और शक्तिके आगे भ… ज्ञान और भगवान् गौण रहे। प्रधानता धनको दी… इसी बीच अहंकारके विकासका भी अवसर आ गया… आज अहंकार भी पूर्ण विकसित है। विज्ञानसे सम… राष्ट्र एक मिनटमें पृथ्वीको राख बना देनेकी धमकी… हैं, पर भगवान् पिताकी भाँति अपने दो वर्षके पु… मोंछ उखाड़ लूँगा, उठा कर पटक दूँगा आदि… सुन रहा है। अच्छी तरह जानता है कि यह अज्ञान…

[शेष पृष्ठ ४९ पर देखिये]

भद्रसेन वैद्य द्वारा 'कल्पना प्रेस' में मुद्रित और प्रकाशित।

परमानन्द संदेश [मार्गशीर्ष-पौष] रजि० सं०
वर्ष २ अंक २, ३ दिसम्बर—जनवरी ए० १९९(

कार्तिक शुक्ल ११ संवत् २०२८ को

जिनकी जयन्ती धूम-धाम से मनायी गयी
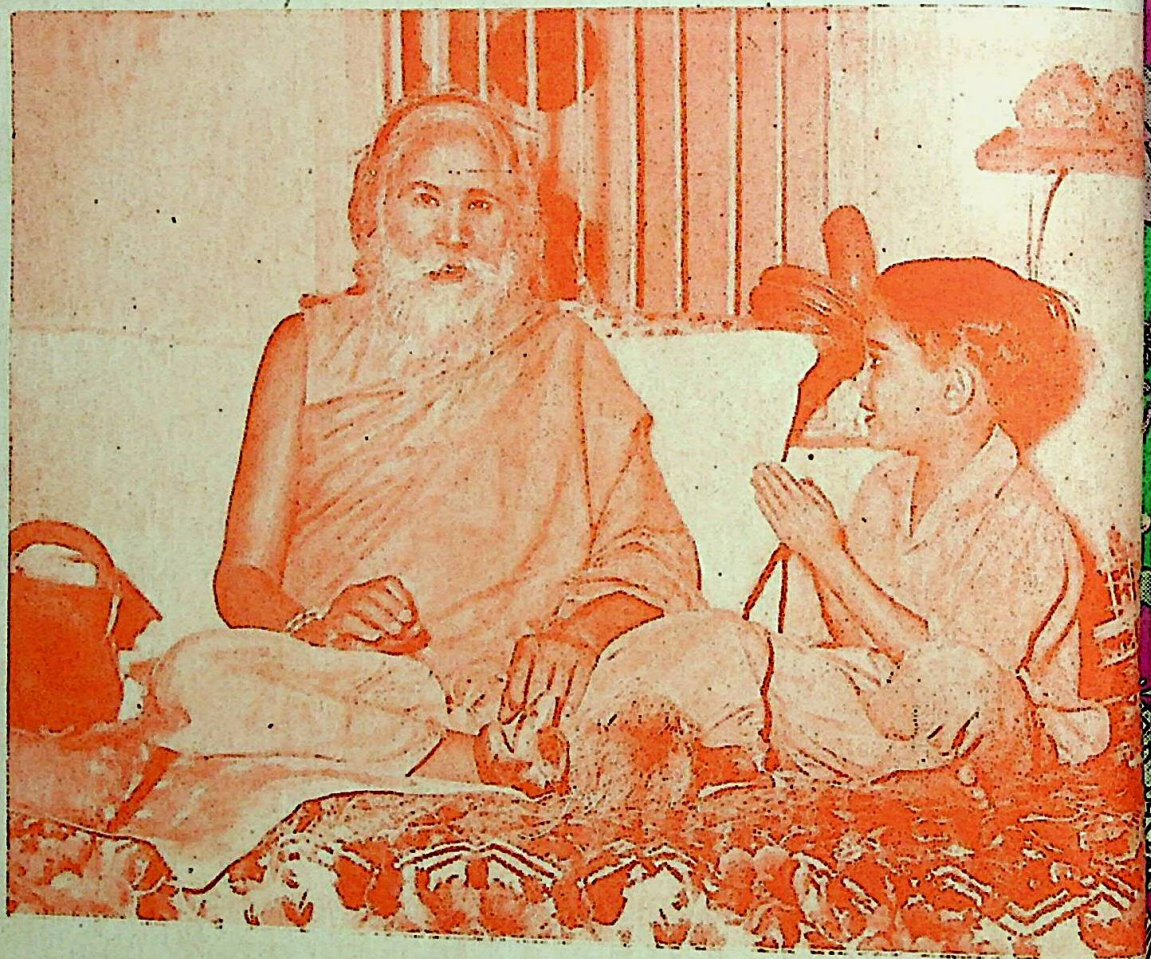
श्री १०८ सद्‌गुरु बाबा शारदाराम उदासीन मुनिजी महाराज
७३ वें जन्मोत्सव पर
हम सभी सेवक उनके दीर्घायुष्य के लिए गुरु परमात्मा से प्रार्थना करते हैं